शैक्षणिक संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 103 (मूल क्रमांक 160)
सितम्बर-अक्टूबर 2025 मूल्य: ₹ 50.00

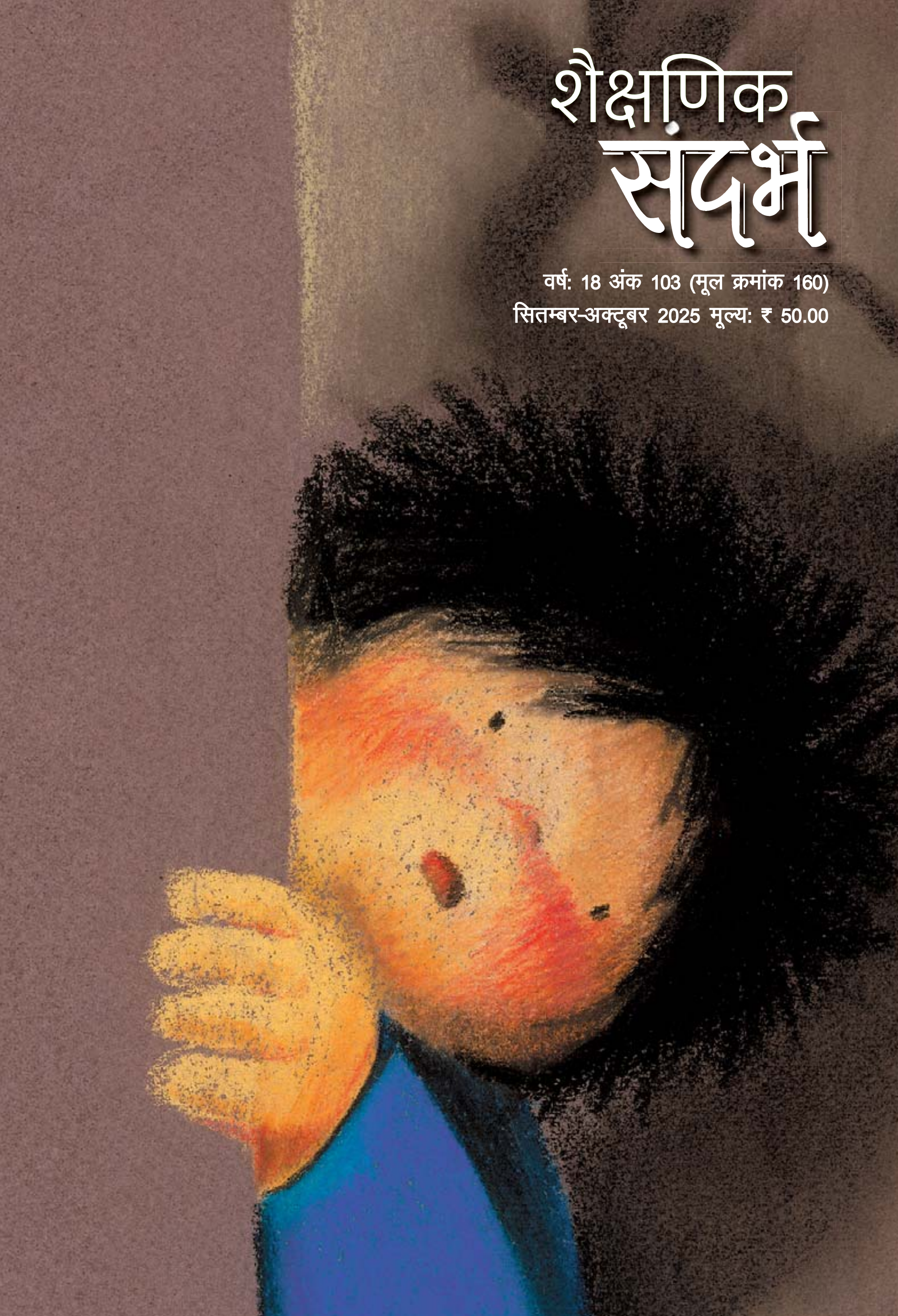

सम्पादन
राजेश खिंदरी
माधव केलकर

सहसम्पादक
पारुल सोनी

सम्पादकीय सहयोग
हिमांशु बावनकर
अतुल वाधवानी

सम्पादकीय सलाहकार
सुशील जोशी
उमा सुधीर

आवरण: राकेश खत्री

वितरण: झनक राम साहू

सहयोग: कमलेश यादव

शैक्षणिक

संदर्भ

वर्ष: 18 अंक 103 (मूल क्रमांक 160)
सितम्बर-अक्टूबर 2025 मूल्य: ₹ 50.00

मूल्य: ₹ 50.00

एकलव्य फाउण्डेशन
जमनालाल बजाज परिसर
जाटखेड़ी, भोपाल-462 026 (म.प्र.)
फोन: +91 755 297 7770, 71, 72, 4200944
www.sandarbh.eklavya.in
सम्पादन: sandarbh@eklavya.in
वितरण: circulation@eklavya.in

अब *संदर्भ* आप तक पहुँचेगी रजिस्टर्ड पोस्ट से।

सदस्यता शुल्क	एक साल (6 अंक)	तीन साल (18 अंक)	आजीवन
	600.00	1500.00	10000.00

मुखपृष्ठ: ***किताब 'अँधेरे का भूत' से एक चित्र।*** पतली-सी, चित्रों से लबरेज़ किताबें बच्चों के एहसासों और सामाजिक विचारों की दुनिया पर किस कदर असर डालने की सम्भावना रखती हैं, इसका आकलन उपासना अपने लेख में बखूबी करती हैं। एकलव्य द्वारा प्रकाशित ईरानी बाल साहित्य की चन्द किताबों पर पढ़िए एक चिन्तनशील समीक्षा, पृष्ठ 69 पर। चित्र: नसीम आज़ादी।

कवर 3: ***दो समुद्री स्लग का मिलन।*** प्रजनन सभी प्राणियों के जीवन की एक बुनियादी ज़रूरत है। मगर प्रजनन हमेशा ही दो प्राणियों - नर और मादा - के मिलन से हो, यह ज़रूरी नहीं। जीव जगत इतना विविध और विस्तृत है कि सामाजीकरण से उभरे इन्सानी नज़रिए की सीमाएँ जल्द ही साफ ज़ाहिर होने लगती हैं। वे जीव जिनमें नर और मादा, दोनों ही प्रकार के जननांग होते हों, वे कैसे प्रजनन किया करते हैं? जीव जगत के अधिकांश फायलम में ऐसे जीव पाए जाते हैं व अधिकांश प्रकार के पौधे भी उभयलिंगी ही होते हैं। ऐसे में प्रजनन को समझने के हमारे आम नज़रिए में किस तरह के बदलाव ज़रूरी हैं, इसके बारे में पृष्ठ 05 पर विपुल कीर्ति शर्मा के लेख को पढ़ते हुए सोचा और समझा जा सकता है।

पिछला आवरण: *लाल सींग और हरा-काला बदन - यह तस्वीर है लाइम तितली की इल्ली की।* सारा दिन पत्ते खाना और अपना मल त्यागकर वहाँ से खिसक लेना, यही काम है इन विचित्र और बेहद दिलचस्प इल्लियों का! मगर इस साधारण से बरताव में छिपे हैं, उनके जीवन के अनेक पहलू जो मौसमों की मार खाते बेल के पौधे के जीवन से अन्तरंग रूप से जुड़े हैं। पढ़िए इनसे जुड़े खूबसूरत विवरण, पृष्ठ 12 पर युवान एविस के लेख में।

यह अंक त्रिवेणी एजुकेशनल ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से प्रकाशित किया जा रहा है।

LINK : कवर 3 - https://www.abc.net.au/news/2017-02-24/scientists-watch-southerly-migration-of-tropical-sea-slugs/8300054
कवर 4 - https://www.orlandosentinel.com/2023/02/08/this-invasive-butterfly-seriously-damages-citrus-trees-it-has-now-reached-florida/

इस अंक में उन चित्रों के स्रोत जिनके बारे में चित्र या लेख के साथ उल्लेख नहीं है, इंटरनेट की विविध वेबसाइट हैं।

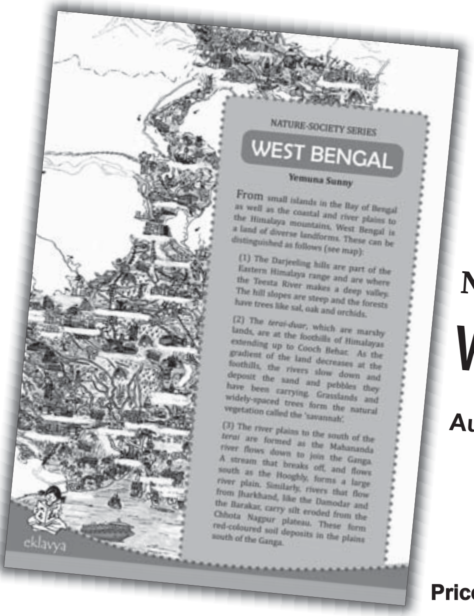

Nature-Society Series

WEST BENGAL

Author: YEMUNA SUNNY

Price: ₹ 100/-

A collection of innovative maps by Yemuna Sunny, critical geographer and teacher, this series is an asset to geography classrooms, libraries, and teacher educational institutions, among others. Using beautiful, distinct icons, these maps clearly mark the physical spaces while conveying the type of human interactions with nature in each of them. The accompanying booklets provide information on the regions including their history, geographical features, environment, people, and intersections of each of these.

Practising and aspiring teachers, educators, learners of all ages, geographers, ecologists, and especially you, our dear reader, would enjoy learning about West Bengal's unique ecology through this edition. It's a promise.

To place the order-
EKLAVYA FOUNDATION
Jamnalal Bajaj Parisar, Jatkhedi, Bhopal,
Madhya Pradesh, 462026, India.
Phone: +91 755 297 7770-71-72
Website: www.eklavya.in | Email: pitara@eklavya.in

बिजली - अच्छी, बुरी और खतरनाक

भारत में हर दिन करीब 47 लोग बिजली से जुड़े हादसों में मारे जाते हैं। इस आधुनिक युग में बिजली के बिना जीवन और दुनिया की कल्पना करना नामुमकिन-सा लगता है। बिजली के तारों में मानव समाज का आज और कल जकड़ता भी है और धड़कता भी है। ऐसे में बिजली, उससे जुड़े खतरे, उन खतरों से बचने और निपटने के तरीके जानना-समझना बेहद ज़रूरी बन जाता है। तो आइए, श्रीकुमार और वर्धन के इस लेख में यही करने की कोशिश करते हैं।

22

अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज

एक घर की उदासी और उमंगों को एक देश की उदासी और उमंगों से जोड़कर देखना, किसी बच्ची के दो-टूक सवाल के धागों में पूरे समाज की पीड़ाओं को उलझा पाना, एक रंग के कितने-कितने अर्थ गढ़ना - यह सब ईरानी बाल साहित्य की कुछ किताबें पढ़कर करना, उपासना को एक संजीदा पाठक के तौर पर भी हमारे सामने लाता है। उपासना अपने इस लेख में फारिदेह खल्अतबरी की लिखी किताबों को पढ़ते-पढ़ते चित्रकारों के ब्रश और लेखक की कलम पर ही सवार हो जाती हैं और सीधे उनके ज़हन की खिड़की तक जा पहुँचती हैं - यह झाँकने कि भला किस खयाल ने वह रंग-ओ-हर्फ चुना। खयाल न जँचने पर वे बेझिझक लौटकर अपने ही चश्मे को बेहतर मानकर किताब में रम जाती हैं। उनकी ये समीक्षाएँ कई तहों में अपना असर करती हैं।

69

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-103 (मूल अंक-160), सितम्बर-अक्टूबर 2025

इस अंक में

05 | उभयलिंगी जीव - नर भी और मादा भी
विपुल कीर्ति शर्मा

12 | बेल के पौधे और लाइम तितली की इल्लियाँ: भाग-2
युवान एविस

17 | अँगुलियों की करामात
आमोद कारखानीस

22 | बिजली - अच्छी, बुरी और खतरनाक
श्रीकुमार नहालुर और वर्धन गुप्ता

39 | चूहे, दीमक और आधारशिला का शिक्षाशास्त्र
अमित और जयश्री

53 | आनन्द निकेतन बैंक
अनिल सिंह

60 | इतिहासों के अँधेरे-उजले गलियारे, सुरंगें और तहखाने...
प्रकाश कान्त

69 | अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज
उपासना

79 | पुराने पेड़ की बातें
शरद जोशी

86 | दोपहिया वाहन मुड़ते वक्त अपने अक्ष पर क्यों झुक जाते हैं?
सवालीराम

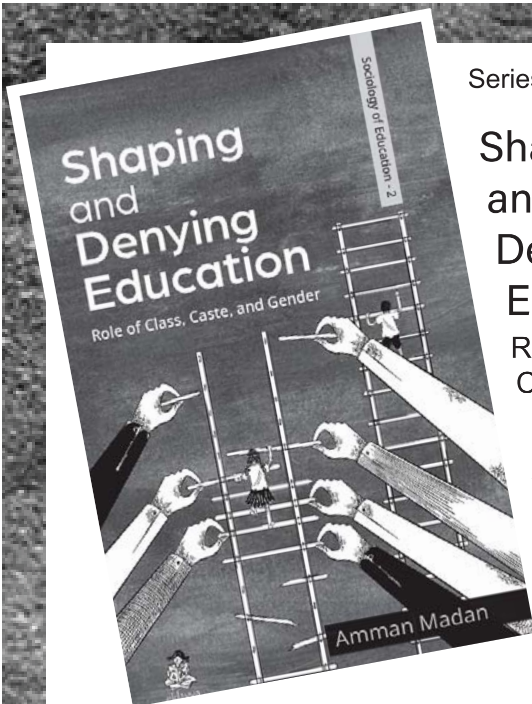

Series: Sociology of Education

Shaping and Denying Education: Role of Class, Caste, and Gender

Author: Amman Madan

Price: ₹ 360/-

The second volume in the Sociology of Education series, Shaping and Denying Education: Role of Caste, Class and Gender explores how class, caste, and gender continue to shape opportunities, identities, and outcomes in Indian classrooms. Written in simple language, it introduces key sociological ideas on stratification, power, and inequality with relatable examples and striking illustrations. A perfect companion for students of sociology, anthropology, education, gender studies, and development studies—and for anyone who believes education should lead to justice.

---

eklavya

To place the order-
EKLAVYA FOUNDATION
Jamnalal Bajaj Parisar, Jatkhedi, Bhopal,
Madhya Pradesh, 462026, India.
Phone: +91 755 297 7770-71-72
Website: www.eklavya.in | Email: pitara@eklavya.in

उभयलिंगी जीव – नर भी और मादा भी

विपुल कीर्ति शर्मा

चित्र-1: केंचुआ - एक उभयलिंगी जीव।

आसपास दिखने वाले पशुओं एवं पक्षियों, और मनुष्य में भी स्पष्ट लिंग भिन्नता (नर-मादा, स्त्री-पुरुष) होने से हमें अक्सर यह भ्रम होता है कि हमारे आसपास मौजूद सभी जीव-जन्तुओं में नर और मादा पृथक होते होंगे। इसलिए जब हमें कुछ ऐसे जन्तुओं की जानकारी मिलती है जिनमें एक ही सदस्य में नर एवं मादा, दोनों लिंग के जननांग हों तो हमें बहुत आश्चर्य होता है। उनके अनूठे प्रकार के प्रजनन को जानने की उत्सुकता भी होती है। ऐसे जीव-जन्तु जिनके एक सदस्य में दोनों प्रकार के जननांग होते हैं, उन्हें उभयलिंगी या हर्माफ्रोडाइट कहते हैं। केंचुआ इसका एक सुलभ उदाहरण है।

प्राणी जगत के वर्गीकृत 34 संघों (फायलम) में से 24 में उभयलिंगी जीव पाए जाते हैं। इनमें से अधिकांश बगैर हड्डी वाले यानी अकशेरुकी जन्तु हैं जिन पर सामान्यतः कम ही ध्यान दिया जाता है। पर वास्तव में, अनेक जन्तु तथा अधिकांश पौधे उभयलिंगी होते हैं। जीवों में उभयलिंगी होना कोई अपवाद नहीं बल्कि सामान्य सिद्धान्त है। यह वंश-वृद्धि

का एक बेहतर विकल्प है। ऐसे सभी जीवों में नर एवं मादा, दोनों के सभी जननांग, जैसे वृषण और अण्डाशय अर्थात् प्रजनन अंगों का सम्पूर्ण सेट एक ही जन्तु में उपस्थित होता है। अण्डाशय एवं वृषण, दोनों अंग पृथक हो सकते हैं या दोनों जुड़े हुए भी हो सकते हैं। जब दोनों जुड़े हुए होते हैं तो इन्हें हम ओवोटेस्टिस कहते हैं। उभयलिंगी जीव में यौन व्यवहार विषमता या संघर्ष चलता रहता है। यह असमंजसता कि उभयलिंगी प्राणी नर के गुण प्रदर्शित करे या मादा के, इसे 'उभयलिंगी असमंजस' कहते हैं। इस स्थिति के कारण कई प्राणियों में बड़े ही विचित्र और हिंसक यौन व्यवहार विकसित हुए हैं।

मनुष्यों में अपवाद स्वरूप ही अण्डाशय और वृषण एक ही व्यक्ति में उपस्थित होते हैं। ऐसी और कुछ अन्य असामान्य स्थिति को इन्टर सेक्स कहते हैं। दो हज़ार मनुष्यों में से कोई एक इंटर सेक्स या डीएसडी (डिसऑर्डर ऑफ सेक्स डेवलपमेंट) पैदा होता है। अन्तस्रावी ग्रन्थियों से अनियंत्रित मात्रा में सेक्स स्टेरॉइड (हार्मोन) के उत्पन्न होने या उनके कार्यशील न होने के कारण असामान्य प्रकार के यौन अंग विकसित होते हैं। ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रयुक्त उभयलिंगी शब्द गलत है तथा अनेक भ्रम उत्पन्न करता है। उभयलिंगी शब्द से ऐसा लगता है जैसे एक ही व्यक्ति में स्त्री और पुरुष, दोनों में पाए जाने वाले सभी प्रजनन अंग (योनि और शिश्न) मौजूद होते हैं, जो शारीरिक स्तर पर मनुष्य में सम्भव नहीं है।

प्रजनन की विभिन्न सम्भावनाएँ

कुछ अपवादों को छोड़कर, उभयलिंगी जन्तु अकेले रहने वाले होते हैं। साथ में रहने वाले उभयलिंगी जन्तुओं में प्रजनन की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं क्योंकि वे जनन कोशिकाओं को ले भी सकते हैं और दे भी सकते हैं। इस प्रकार ऐसे जन्तु अपना डीएनए बाँट सकते हैं, साथ ही साथ, स्वयं की सन्तति भी उत्पन्न कर सकते हैं। जब दो उभयलिंगी जन्तुओं को प्रजनन करने का मौका मिलता है तो तीन सम्भावनाएँ बनती हैं। पहली, जब दोनों जन्तु एक ही समय में दोनों – अर्थात् नर और मादा जोड़ीदार की भूमिकाएँ निभाएँ तथा पारस्परिक (रेसिप्रोकल) प्रजनन करें। इस प्रकार के जोड़े में दोनों के शिश्न एवं योनि प्रयुक्त होंगी। केंचुआ इसका अच्छा उदाहरण है। दूसरा तरीका हो सकता है जहाँ एक तरफा सम्भोग हो। मतलब दोनों जन्तुओं में से एक नर एवं दूसरा मादा की भूमिका निभाए। जो जन्तु नर होगा, उसका शिश्न और मादा की भूमिका निभाने वाले दूसरे जन्तु की योनि प्रयुक्त होगी। यह जोड़ा बिलकुल वैसा ही होगा जैसे मानव में परम्परागत तरीके के स्त्री-पुरुष होते हैं। बस, अन्तर यह है कि इनके नर

में एक सक्रिय योनि तथा मादा में एक सक्रिय शिश्न भी होता है।

ऐसे सभी प्रकार के जीवों में जैविक रूप से नर बनने के ज़्यादा फायदे होते हैं क्योंकि मात्र शुक्राणुओं को मादा के शरीर में पहुँचाकर वंश वृद्धि का श्रेय प्राप्त किया जा सकता है। इसके विपरीत, मादा को प्रजनन के बाद निषेचित अण्डाणुओं के पालन-पोषण पर अधिक श्रम करना पड़ता है।

तीसरा प्रकार अधिक जन्तुओं में नहीं मिलता है पर इसमें अकेला एक उभयलिंगी जन्तु स्वयं को निषेचित कर सकता है। ये वे जन्तु होते हैं जिनमें एक ही जन्तु में शिश्न एवं योनि, दोनों होते हैं और उनमें प्रजनन के लिए आवश्यक जैविक पदार्थों का आदान-प्रदान सम्भव है। इन्हें दूसरे जन्तु की आवश्यकता नहीं होती। *टीनिया सोलियम* नामक कृमि इसका अच्छा उदाहरण है। जैव-वैज्ञानिकों को यह तरीका सबसे पुरातन लगता है – निषेचन सुनिश्चित करने का यह सबसे बेहतर तरीका है। यद्यपि सन्तति में विविधता की सम्भावना इसमें कम हो जाती है। स्वप्रजनन से निपटने के लिए अनेक जन्तु स्वयं से शुक्राणु प्राप्त करने के बाद संचित ऊर्जा को अन्य से शुक्राणु प्राप्त करने में लगाते हैं। अगर एक और साथी मिल जाता है तो स्वयं के शुक्राणु को दान कर और दूसरे के शुक्राणु प्राप्त कर स्वप्रजनन-अवसाद* से बचा जा सकता है।

दो उभयलिंगी जन्तुओं के बीच प्रजनन के लिए शुक्राणु प्राप्त करने के सम्बन्ध में दो शब्दों का प्रयोग किया जाता है – स्वयं के शुक्राणु के लिए ‘ऑटोस्पर्म’ एवं दूसरे से प्राप्त शुक्राणुओं के लिए ‘एल्लोस्पर्म’। मैथुन के समय दूसरे जन्तुओं से प्राप्त एल्लोस्पर्म की मात्रा बेहद कम पाई गई है। शायद अनेक दाताओं से शुक्राणु प्राप्त कर सकने के उपाय के

* *इसे अँग्रेज़ी में self-fertilization depression कहते हैं। ऐसी घटना जिसमें स्व-निषेचन से उत्पन्न सन्तानों की योग्यता कम हो जाती है, अर्थात् उनके जीवित रहने और प्रजनन की सम्भावना कम हो जाती है।*

चित्र-2: *टीनिया सोलियम या पोर्क टेपवर्म नामक कृमि उन देशों में सबसे आम है जहाँ सूअर का मांस खाया जाता है। यह एक ऐसा उभयलिंगी जन्तु है जो स्वयं को निषेचित कर सकता है। इनमें एक ही जन्तु में शिश्न एवं योनि, दोनों मौजूद होते हैं। इन्हें प्रजनन के लिए दूसरे जन्तु की आवश्यकता नहीं होती इसलिए निषेचन सुनिश्चित करने का यह सबसे बेहतर तरीका होता है।*

रूप में किसी एक से शुक्राणुओं की संख्या को कम रखा गया है।

शिश्न का टूटकर गिरना

हिन्द और प्रशान्त महासागरीय जल में पाए जाने वाले समुद्री स्लग *क्रोमोडोरिस रेटिक्युलेटा* एक विचित्र प्रणय अनुष्ठान को अपनाते हैं। समुद्री तल में लाल-सफेद रंग की बच्चों की चप्पलों जैसे दिखने वाले रंगीन स्लगों के शरीर के अग्र सिरे पर एक जोड़ी टेन्टेकल्स एवं शरीर के पिछले सिरे पर फूल के समान गिल्स होते हैं। आप शायद विश्वास नहीं करेंगे लेकिन ये वे जन्तु हैं जिनमें मैथुन समाप्त होते ही, योनि से बाहर निकालते समय नर का शिश्न टूटकर गिर जाता है। आपको लग रहा होगा कि प्रजनन के अगले मौके पर ये बड़े हताश महसूस करते होंगे। किन्तु ऐसा नहीं है। लगभग हर अवसर पर ये पुनः तैयार रहते हैं। क्योंकि दोनों लम्बे, कुण्डलित शिश्न के बचे हुए हिस्से शरीर के अन्दर छुपाए रहते हैं।

लगभग सभी समुद्री स्लग उभयलिंगी होते हैं तथा सभी को वैज्ञानिक भाषा में न्यूडिब्रेंक (नंगे, आवरण विहीन गलफड़ों वाले) कहा जाता है। अधिकांश की आयु एक वर्ष होती है। ये बहुत रंगीन और मांसाहारी प्राणी होते हैं। एक न्यूडिब्रेंक, *सी. रेटिक्युलेटा* का प्रत्येक सदस्य नर एवं मादा, दोनों होता है। मैथुन के दौरान दो स्लग पारस्परिक सम्भोग मुद्रा में

चित्र-3: *समुद्री स्लग उभयलिंगी होते हैं तथा एक विचित्र प्रणय अनुष्ठान अपनाते हैं। इनका प्रत्येक सदस्य नर एवं मादा, दोनों होता है। मैथुन के दौरान दो स्लग पारस्परिक सम्भोग मुद्रा में एक-दूसरे के पास आकर एकसाथ एक-दूसरे की योनि में अपने-अपने शिश्न प्रविष्ट करते हैं। और मैथुन समाप्त होते ही नर का शिश्न टूटकर गिर जाता है। धागे रूपी शिश्न, दोनों स्लग के बीच में दिख रही मोटी संरचना के अन्दर होते हैं।*

एक-दूसरे के पास आकर एकसाथ एक-दूसरे की योनि में अपने-अपने शिश्न प्रविष्ट करते हैं। एक पल को तो ऐसा दिखता है कि दोनों सदस्य एक-एक सफेद धागे से जुड़े हुए हैं परन्तु पास से देखने पर दो धागे रूपी शिश्न नज़र आने लगते हैं। दस मिनिट तक चलने वाली मैथुन क्रिया के दौरान वे एक-दूसरे की योनि को वीर्य से भर देते हैं।

विश्वभर में विरले लोगों को ही इनकी प्रणय-प्रक्रिया को देखने का अवसर प्राप्त हुआ है। जापान के ओसाका विश्वविद्यालय की अयामी सेकिज़ावा ने तो मैथुन करते स्लग की पूरी शूटिंग ही कर डाली। शोध के दौरान उन्होंने पाया कि मैथुन पूर्ण होने के बाद अपने-अपने रास्ते जाते स्लग ने योनि से अपने शिश्न को वापस खींचा ही नहीं क्योंकि वे योनि में ही टूट गए थे। आपके समान ही अयामी को भी यही लगा कि इन स्लग की सेक्स लाइफ का अन्त हो गया है। परन्तु एक दिन पश्चात् ही ये स्लग फिर से प्रजनन के लिए तैयार थे। इसकी वजह यह थी कि उनका शिश्न तीन सेंटीमीटर लम्बा था। पहले मैथुन के दौरान एक सेंटीमीटर का अग्रिम हिस्सा ही टूटकर अलग हुआ था, बाकी बचा हुआ हिस्सा घड़ी की स्प्रिंग के समान शरीर में धँसा हुआ था। अयामी ने जब शिश्न का माइक्रोस्कोप से अवलोकन किया तो उन्होंने पाया कि शिश्न की कोशिकाएँ नया शिश्न बनाने में भी मददगार होती हैं।

लव डार्ट - जननांगों में परिवर्तन

यदि आप अभी तक ऊबे नहीं हों तो एक और उदाहरण से गेस्ट्रोपोड वर्ग की प्रणय लीला की गाथा को खत्म करूँगा। यह उदाहरण है, स्थलीय स्नेल का। ये ऐसे जन्तु हैं जो मैथुन के पूर्व काइटिन या केलकेरियस प्रकार के कड़े और तीक्ष्ण तीर के समान शिश्न से जोड़ीदार की त्वचा को हाइपोडर्मिक सिरींज के समान भेद देते हैं। अधिकांश ज़मीन पर पाई जाने वाली स्नेल प्रजातियों में इनके शिश्न तेज़, धारदार और कँटीले होते हैं। वास्तव में, यह तीर साथी में रसायनों को पहुँचाने का एक तरीका मात्र है। ये रसायन उभयलिंगी साथी में पहुँचते ही उनमें मौजूद मादा जननांग में भारी परिवर्तन करते हैं, जैसे – उनके बर्सा कॉप्यूलेट्रिक्स नामक अंग में मैथुन से प्राप्त अतिरिक्त शुक्राणुओं के पाचन को रोकते हैं। इस प्रकार से दाता साथी के शुक्राणुओं के अगली पीढ़ी में जीन पहुँचाने की सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। केवल इतना ही नहीं, ग्राही साथी प्यार का तीर यानी लव डार्ट खाने के बाद अगला मैथुन 15 दिनों के पहले नहीं कर पाता है, जबकि प्यार का तीर नहीं खाने वाले, एक सप्ताह में ही अगले मैथुन की तैयारी कर लेते हैं। कुछ स्नेल प्रजातियों में प्यार के

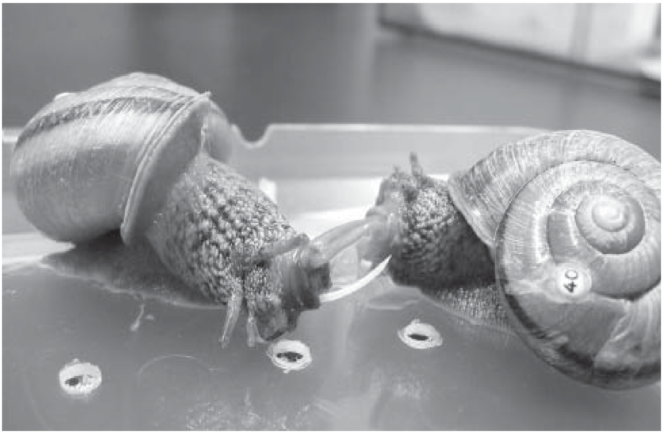

फोटो - काज़ुकी किमुरा।

चित्र-4: बाईं ओर का उभयलिंगी स्नेल प्रजनन के दौरान अपने साथी की ओर एक नुकीला प्रेम-बाण (तीक्ष्ण तीर के समान शिश्न - love dart) तानता हुआ। इनके शिश्न तेज़, धारदार और कँटीले होते हैं जो जोड़ीदार की त्वचा को भेद देते हैं। वास्तव में, यह तीर साथी में रसायनों को पहुँचाने का एक तरीका मात्र है। यह फोटो nationalgeographic.com से साभार।

तीर से ग्राही में नरत्व क्रियाओं में कमी आती है जिससे ग्राही की पूरी शक्ति मादा जननांगों की वृद्धि और क्रियाशीलता में लगती है।

इस प्रकार प्यार के तीर प्रायः हर्माफ्रोडाइट या द्विलिंगीय ग्राही में मादा भाग की प्रजननकारी क्रियाओं में वृद्धि करते हैं तथा दाता के नरत्व भाग को सफलता दिलाते हैं। वैज्ञानिकों ने इन स्नेल के वीर्य या सेमिनल फ्लूइड से ऐसे पेप्टाइड खोज निकाले हैं जो ग्राही के नरत्व को कम करते हैं।

केंचुआ और चपटे कृमि

एनिलिडा संघ में भी उभयलिंगी तरीका प्रजनन में काफी सफल रहा है। किसानों के मित्र केंचुए की त्वचा में चलने के लिए काँटों के समान छोटी-छोटी 'एस' आकृति की रचनाएँ होती हैं जिन्हें 'सेटे' कहते हैं। उनके शरीर के प्रत्येक खण्ड से दो जोड़ी सेटे ज़मीन में अटककर आगे बढ़ने में मदद करते हैं। सेटे काइटिन नामक प्रोटीन से बने कड़े बाल ही होते हैं। केंचुए के शरीर की निचली सतह पर 40 से 44 कॉपुलेटरी सेटे होते हैं जो तीन हिस्सों में जमे रहते हैं। प्रजनन के समय दोनों साथी सेटे के द्वारा पकड़ बनाकर, अपने-अपने जेनाइटल पेपिला से चार जोड़ी शुक्राणु संग्रहण करने वाली स्पर्मेथिकाओं में अपने-अपने शुक्राणु डाल देते हैं। कॉपुलेटरी सेटे चलने के उपयोग में आने वाले

चित्र-5: प्रजनन के दौरान दो केंचुए।

सेटे से बिलकुल भिन्न होते हैं तथा प्रजनन कार्य में सहायता के अनुसार लम्बे एवं खोखले हो जाते हैं। ऐसा समझा जाता है कि प्रजनन के दौरान जब दो केंचुए विपरीत दिशा में शरीर के अग्र हिस्से एक-दूसरे से चिपकाते हैं तो सेटे एक-दूसरे में अटककर शुक्राणु के आदान-प्रदान में मदद करते हैं और चारों स्पर्मेथिकाओं में शुक्राणुओं के समान वितरण में सहायक होते हैं।**

एनिलिडा के समान ही चपटे कृमि (प्लेटिहेलमिन्थस) जैसे टीनिया भी उभयलिंगी होते हैं। जो साथी पहल करके दूसरे साथी में शुक्राणु को प्रवेश करा देता है, वह नर कहलाता है और जो शुक्राणु ग्राही होता है, मादा कहलाता है। सेक्स करने का उनका तरीका बेहद सीधा-सादा है। एक साथी दूसरे के शरीर में लिंग को छुरे की तरह घोंप देता है। मादा की भूमिका अदा करने वाला साथी, मैथुन के पश्चात् भोजन की तलाश में निकल जाता है क्योंकि अण्डों के विकास के लिए भरपूर भोजन की आवश्यकता होती है।

*** केंचुओं में प्रजनन के बारे में विस्तार से जानने के लिए संदर्भ अंक 24-25 (जुलाई-अक्टूबर, 1998) में प्रकाशित लेख 'केंचुए में प्रजनन' पढ़ा जा सकता है।*

विपुल कीर्ति शर्मा: शासकीय होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर में प्राणिशास्त्र के वरिष्ठ प्रोफेसर हैं। इन्होंने 'बाघ बेड्स' के जीवाश्मों का गहन अध्ययन किया है तथा जीवाश्मित सीअर्चिन की एक नई प्रजाति की खोज की है। नेचुरल म्यूज़ियम, लंदन ने सम्मान में इस प्रजाति का नाम उनके नाम पर *स्टीरियोसिडेरिस कीर्ति* रखा है। वर्तमान में, वे अपने विद्यार्थियों के साथ मकड़ियों पर शोध कार्य कर रहे हैं।

बेल के पौधे और लाइम तितली की इल्लियाँ

युवान एविस

मैं एक आवासीय स्कूल में 16 बच्चों का 'हाउस मास्टर' था और मुझे हफ्ते में 20 घण्टे पढ़ाना भी पड़ता था। इन दोनों के अलावा मैं बचे वक्त में पत्राचार पाठ्यक्रम (कॉरेस्पोंडेंस) से अपनी स्कूल की पढ़ाई भी पूरी कर रहा था। और तो और, बहुत सारी स्टाफ मीटिंग्स में बैठना पड़ता था और गैरहाज़िर शिक्षकों की कक्षाएँ भी लेनी पड़ती थीं। इन हालात में, इल्लियों की जीवनशैली पर मुझे बड़ी जलन होने लगी। दिनभर इनका मुख्य काम खाना ही होता है, और फिर, ज़रा और भी खाना। खाने-खाने के बीच में ये पत्तियों की ठण्डी छाया में लम्बा आराम भी फरमाती हैं। इस पेटूपन के नतीजतन, अपनी ज़िन्दगी में इल्ली बार-बार अपनी खुद की खाल से बड़ी हो जाती है, लिहाज़ा उसे इस खाल को अक्सर छोड़ना पड़ता है। अलबत्ता, ये फौरन ही इस छोड़ी हुई चमड़ी को भी खा जाती हैं।

अपना पेशा या करियर तय करने से पहले ही, ज़िन्दगी ने मुझे स्कूल में पढ़ाने पर मजबूर कर दिया था। मेरे पास तो कोई डिग्री भी नहीं थी। इससे मेरे अन्दर कुछ कमियों का एहसास गहरा रहा था, खास तौर से मेरे विशिष्ट सहकर्मी शिक्षकों की सोहबत में। सिर्फ इल्ली, तितली, चिड़िया, साँप और आसपास के बाकी जंगली जानवरों के साथ वक्त बिताते हुए ही मेरी उदासी छँटती थी और हावी होते ज़हरीले विचार दूर हो जाते थे, और मैं आगे बढ़ पाता था। लेकिन अक्सर बाकी शिक्षकों के साथ बातचीत में कोई-न-कोई जानवर की प्रजाति का हवाला आ जाता, और मेरे द्वारा उनके कठिन वैज्ञानिक नाम बताने पर इन दिग्गज बुद्धिजीविओं से मुझे इज़्ज़त मिल जाती थी।

दुश्मनों से बचाव की रणनीतियाँ

अब लाइम तितली पर वापिस आते हैं। वह सिर्फ एक और चीज़ पर मशक्कत करती है और वो है मल त्यागना। लेकिन गौर करने की बात है कि मल त्यागने का फर्ज़ मुकम्मल करते ही, वो इल्ली फौरन उस जगह से कूच कर लेती है। कभी-कभार अलग पत्तियों पर भी चली जाती है। ज़ाहिर है, आप नहीं चाहते कि अपने ही छोड़े सुरागों से दुश्मन को आपकी खबर लग जाए। अपनी बीट से दूरी बरतना या उसको छुपा देना, काफी सारे कीड़े और उनकी इल्लियाँ ही नहीं बल्कि वो सारे जानवर भी करते

हैं जो दूसरे जानवरों के ‘मेन्यू कार्ड’ पर पाए जाते हैं। ‘मोरिंगा वेब्बर’ और ‘औल स्किपर’ की इल्लियाँ अपनी बीट को पत्तियों के बीच में सिलकर छुपा देती हैं। और ‘जीयोमेट्रिड पतंगे’ की इल्लियाँ अपने पिछवाड़े ऐसी दिशा में करते हैं कि पौधे की बजाय उनकी टट्टी सीधे ज़मीन पर गिर जाए। और आप कभी गौर फरमाइएगा कि पंख-नुमा कण्ठ वाली छिपकली कैसे बीट का काम करते ही उस जगह से भाग लेती है। लेकिन सबसे कमाल की हरकत तो झींगुर ही करता है। जैसे ही वो फारिग हो जाता है, फौरन गिरती लेंडी को अपनी एड़ी से एक ज़ोरदार लात मारता है, ताकि वो कई गज़ दूर जाकर गिरे।

अपनी चमड़ी चौथी या पाँचवीं बार बदलने के बाद लाइम इल्ली में काफी बड़ा रूपान्तरण होता है, हालाँकि ये सिर्फ उसके भेस में होता है, बर्ताव में नहीं। पहले के टट्टी-जैसे पोशाक से अब निकलती है, एक बड़ी तोते-जैसी हरे रंग की इल्ली। यह बदलाव एक तिलस्माती चीज़ लगती है, जैसे कोई मेंढक एक राजकुमार बन जाए। शुरू में ऐसा लगता है कि इसकी मुण्डी पर निशानात साँप जैसे हैं। इससे ज़्यादा हैरत-अंगेज़ और सर्प-नुमा तो ‘बाज़ पतंगे’ की इल्ली होती है जिसकी कमज़ोर नकल लाइम इल्ली करती है (अगर करती भी है, तो)। अक्सर यह खयाल आता है कि अपने जीवन-चक्र के इस ही मकाम पर लाइम इल्ली अपनी काया इतनी क्यों पलट लेती है। गालिबन टट्टी की नकल करने के लिए वो बहुत बड़ी हो गई है, क्यूँकि किसी भी जानवर की लेंडी इतनी बड़ी नहीं होती। चुनांचे, अब वो छुपने के लिए छलावरण की पुरानी तकनीक पर लौट आती है।

अलबत्ता, खतरे से बचने के लिए लाइम इल्ली एक और खासा तरीका अपनाती है (उनकी नस्ल – स्वालोटेल – की अन्य तितलियाँ भी यह तरीका अपनाती हैं)। यह प्राणी शरीर को पीछे की ओर सिकोड़कर अपनी

चित्र-1: *खतरे से बचने के लिए लाइम इल्ली शरीर को पीछे की ओर सिकोड़कर, अपनी मुण्डी पर से एक खूनी लाल रंग की सींग-नुमा रचना निकालती है। साँप की जीभ की तरह इसके दो शाख होते हैं जिससे हमलावार कुछ लम्हों के लिए दंग हो जाता है। इस बीच इल्ली भाग जाती है। और इसी वक्त वह एक अजीब-सी गन्ध भी निकालती है जिससे सूँघनेवाले को मितली-सी आने लगती है।*

मुण्डी पर से अचानक एक खूनी लाल रंग की सींग-नुमा चीज़ निकालती है। साँप की जीभ की तरह इसके दो शाख होते हैं और यह हमलावर को कुछ लम्हे दंग छोड़ देती है। इस बीच इल्ली भाग जाती है। और इसी वक्त मालूम होता है कि इल्ली ने कोई अजीब-सी बू भी निकाली है। यह बू शुरू में मीठी लगती है लेकिन कुछ देर बाद सूँघनेवाले को मितली-सी आने लगती है।

इस रवैय्ये को समझने के बाद, मैं लाइम इल्ली के इस बर्ताव से अपने शिष्यों और बाकी शिक्षकों के दिल बहलाने लगा। अलबत्ता, इल्ली की पेश-ए-बू हर एक को नहीं भायी। मुझे यह जानने की जिज्ञासा थी कि इस इल्ली के असल हमलावरों पर यह घिनौनी बू क्या असर करती है। पहले मुझे लगा कि मैं छुपकर इल्ली का शिकार करती किसी चिड़िया का इन्तज़ार करूँ लेकिन मैंने जल्द ही ये खयाल त्याग दिया। इसकी बजाय मैंने एक परेशान इल्ली को अपने वफादार कुत्ते 'डॉन' की नाक के नीचे पकड़ा, उसका असर देखने। शुरू में डॉन को कोई फर्क नहीं पड़ा, लेकिन जैसे ही उसके नथुनों में बू पहुँची, वो फौरन पीछे हटा और बार-बार छींक मारने लगा। बस, इसके अलावा और कुछ नहीं। शायद किसी बुलबुल जैसी छोटी प्राणी पर इस बू के असरात और शदीद होंगे। लेकिन कुछ दिन बाद जब हम बेल के पौधों के सामने से गुज़रे, मुझे ऐसा लगा कि डॉन मुझे शक्की नज़रों से ताक रहा था।

लाइम तितलियों का जीवन-चक्र

इसी दौरान मैं माध्यमिक शाला के बच्चों को उनका सबक 'तितली का जीवन-चक्र' सिखाता हूँ। स्कूल के जड़ीबूटियों वाले बगीचे में, लाइम और अन्य तितलियाँ और पतंगों के अण्डे से लेकर उनके जीवन-चक्र के सारे मुकाम पाए जाते हैं। बच्चों को कुछ खास पौधों के पत्तों के नीचे अण्डे, लार्वा (इल्ली) और प्यूपा (कोशित) ढूँढने पड़ते हैं। फिर वो एक हफ्ते के लिए उनपर अपनी नज़र रखते हैं और उनमें बदलाव दर्ज करते हैं। वो एक-एक तितली का तफसील में वर्णन करते हैं ताकि उनको कक्षा में 'फील्ड गाइड' की मदद से पहचान सकें। बच्चों के लिए यह एक बड़ी दिलकश गतिविधि होती है और हर बार उन्हें नई चीज़ें पता चलती हैं। इस वक्त क्लास में शोरगुल और अफरा-तफरी भी हो जाती है, लेकिन बच्चों के साथ तो यह होना ही होता है। क्लास की आखिर में बच्चे अक्सर लाइम इल्ली को तंग करके, उसके लाल सींगों वाले करतब देखते हैं। ये हमेशा उनको जोश से भर देते हैं।

जब एक बड़ी-सी इल्ली अपनी आँतों को बड़े धूम-धाम से खाली करती है, मालूम होता है कि उसका

चित्र-2: लाइम तितली का रूपान्तरण जिसमें उसकी इल्ली, प्यूपा और वयस्क रूप दिख रहा है।

रूप-ए-तितली अपनाने वाला वक्त आ ही गया है। पहले तो वो अपना पिछवाड़ा पौधे पर कस लेती है और उससे टेढ़ी लटक जाती है। दो रेशमी धागों से वो अपना धड़ भी उस डण्डी पर बाँध लेती है। मालूम होता है कि पौधे की डण्डी से कोई छज्जा निकला हुआ हो। पौधों के अलावा, मुझे लाइम तितली के प्यूपा और भी असम्भव जगहों पर मिले हैं, मसलन ईंट के ढेर, बिजली के पोल, और लोहे की जाली वाली दीवार, लेकिन मोटे तौर पर कह सकते हैं कि वो हमेशा अपने मेज़बान पौधे के नज़दीक प्यूपेट करते हैं। एक दिन के अन्दर उनका हरा रंग मुरझाने लगता है और यह प्यूपा एक समुद्री शंख जैसा दिखने लगता है। अलबत्ता, यह ज़रूरी नहीं कि जब कोई इल्ली ऐसा करे तो वो प्यूपेट ही करेगी। अक्सर मैंने इन इल्लियों के बदलते रूपों को दस्तावेज़ करने के लिए, इनका पीछा किया है। मगर जल्द ही पता चला कि इल्ली दोबारा मटरगश्ती कर रही है या उसने एक और पत्ता हज़म कर

चित्र-3: लाइम तितली की इल्ली में जब वयस्क बनने की प्रक्रिया शुरू होती है तो पहले वो अपना पिछवाड़ा पौधे पर कस लेती है और उससे टेढ़ी लटक जाती है। फिर दो रेशमी धागों से वो अपना धड़ भी उस डण्डी पर बाँध लेती है। इसके बाद वह प्यूपा में तब्दील हो जाती है।

लिया है। मैंने यह भी जाना कि ये इल्लियाँ दोपहर की गर्मी में झपकी लेना पसन्द करती हैं।

कुछ ही महीनों में, लाइम इल्लियों के कई घराने प्यूपेट करके तितली बन गए होंगे, और उन तितलियों ने दोबारा साथी ढूँढकर अण्डे भी दे दिए होंगे। गालिबन नवम्बर के आखिर तक मैंने बेल के पौधों पर लाइम तितलियों की कम-से-कम पाँच पीढ़ियाँ देखी होंगी। एक वक्त तो ऐसा भी आता है जब लाइम तितलियों की तादाद बाकी सारी तितलियों से बहुत ज़्यादा बढ़ जाती है। जहाँ देखो, इन्हीं की हिचकिचाती, अठखेलियाँ मारती परवाज़ दिखती है। लेकिन जब पूर्वोत्तर मानसून की पहली बौछारें पड़ने लगती हैं और दिसम्बर में एक-आध तूफानी बवण्डर आता है, तो इन तितलियों का पलना-पनपना थम जाता है। और बेल के पौधों की सुकून-भरी आहें तकरीबन सुनाई देती हैं। अब मुमकिन है कि लाइम तितलियाँ पलायन कर गई हों, चूँकि उनकी संख्या घट गई है। इस मुश्किल मौसम में बाकी तितलियाँ छुप-छुप कर रहती हैं, ज़्यादा दिखती नहीं। मैं यह भी देख रहा हूँ कि बीते सालों में बेल के पौधे बहुत अच्छे से उगने लगे हैं। अब मैं उनके तने को अपनी अँगुलियों से मुश्किल से ही घेर पाता हूँ। जब गर्मी का मौसम आएगा तो वो अपनी टहनियों से बहुतेरी ताज़ी तिगुन पत्तियाँ निकालेंगे और नई शाखों पर भयंकर काँटे-ही-काँटे उग आएँगे। मैं सोचता हूँ कि शायद पिछले महीनों में सही गई ज़्यादतियाँ, इन बेल के पेड़ों को सालभर फलने-फूलने के लिए बेहतर तैयार कर देती हैं।

यूवान एविस: हिन्दुस्तान के लेखक, प्रकृतिवादी, शिक्षक और एक्टिविस्ट। वर्तमान में, अबेकस मॉण्टेसरी स्कूल में 'फार्म, पर्यावरण और समाज' कार्यक्रम का समन्वय करते हैं। उन्होंने दो किताबें और कई लेख लिखे हैं। शायद सैंक्चुअरी के अब तक के सबसे कम उम्र के ग्रीन टीचर पुरस्कार प्राप्तकर्ता, युवान सबसे बेहतरीन, सबसे करिश्माई प्रकृति के शिक्षाविदों में से एक हैं। *बेल के पौधे और लाइम तितली की इल्लियाँ* लेख के लिए यूवान को 2017 में मद्रास नेचुरलिस्ट्स सोसाइटी से एम. कृष्णन नेचर राइटिंग अवार्ड मिला था। यूवान का काम उनके इंस्टाग्राम खाते a_naturalists_column पर देखा जा सकता है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: फज़ल रशीद: ज़्यादातर बागबानी और पेड़-पौधों से जुड़े कामों में मसरूफ रहते हैं। भोपाल में निवास। सम्पर्क - fazalrashid@gmail.com

यह लेख *कथादेश* पत्रिका के अंक - जनवरी 2025 से साभार।

इस लेख का मूल अँग्रेज़ी नोशन प्रेस द्वारा प्रकाशित युवान एविस की किताब *A Naturalist's Journal* में प्रकाशित हुआ है।

अँगुलियों की करामात

आमोद कारखानीस

एक ऐसा समय था जब दुनिया दूसरे विश्व युद्ध का सामना कर रही थी। इस विश्व युद्ध की शुरुआत में ही जर्मन सेना ने तेज़ी-से फ्रांस और बेल्जियम पर कब्ज़ा कर लिया था। और पूरे यूरोप को पैरों तले रौंदते हुए जर्मन फौज पोलेंड की ओर कूच कर रही थी। बर्लिन में फौजी मुख्यालय में दिनभर विविध तरह की मीटिंग और प्लानिंग चलती रहती थीं। दिनभर की थकान मिटाने के लिए शाम के समय कई फौजी अफसर पास के पब में इकट्ठा होते थे। आज भी अफसरों का एक समूह वहाँ डटा हुआ था। मेजर हेलस्ट्रोम आज खासे खुश थे। बीयर पीते हुए गपशप भी चल रही थी।

कोई एक जर्मन फौजी बोल रहा था कि "फ्रेंच लोग शेखी बघारते हुए कह रहे थे कि उनकी मैजिन लाइन (मैजिनॉट लाइन) एक अभेद सुरक्षा रेखा है। क्या हुआ उस सुरक्षा रेखा का, एक ही हमले में सारी अभेदता ढह गई?"

एक अन्य फौजी बोल पड़ा, "हाँ, सुरक्षा रेखा पर सीधे प्रहार न करते हुए, किनारे से भीतर जाने का विचार एकदम ज़बरदस्त था। अब फ्रांस तो हाथ में आ गया, देखते हैं आगे क्या होता है।"

"क्या बोल रहे हो? अब कब है अगला हमला?"

"आज ही इस बारे में एक मीटिंग

चित्र-1: बार में बैठे फौजी।

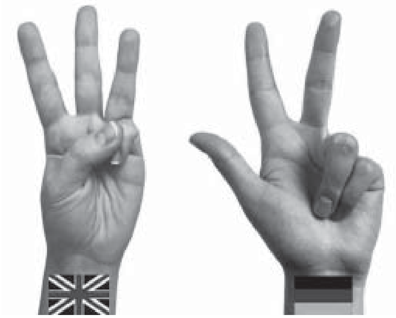

चित्र-2: अँगुली से गिनने का ब्रिटिश और जर्मन तरीका।

हुई थी। ज़बरदस्त प्लान बनाया गया है। मैं उसके बारे में बताता हूँ, लेकिन उससे पहले एक-एक बीयर मँगवा लो।"

"ठीक है मँगवाता हूँ, कौन-कौन लेगा, तुम तीनों लोगे न?"

लेफ्टिनेंट आर्ची हायकॉक्स ने अपनी जगह पर बैठे-बैठे ही तुरन्त बार बॉय को आवाज़ दी और अँगुलियों के इशारे से तीन बीयर लाने के लिए कहा।

अचानक जर्मन फौजी हेलस्ट्रोम उठ खड़े हुए। उनका नशा काफूर हो चुका था। वे आर्ची की ओर अँगुली से इशारा करते हुए चिल्लाए, "आर्ची, तुम ब्रिटिश जासूस हो।" और सिपाहियों को बुलाकर आर्ची को बन्दी बना लिया गया।

ऐसा क्या घटा था कि मेजर हेलस्ट्रोम ने आर्ची को पहचान लिया?

हुआ कुछ ऐसा कि आर्ची ने तीन बीयर मँगवाने के लिए बार बॉय को अँगुलियों से 'तीन' का इशारा करते समय तर्जनी, मध्यमा और अनामिका अँगुलियों को खुला रखा और शेष अँगुलियों को बन्द रखा। यह 'तीन' दिखाने का ब्रिटिश तरीका है, जो हम लोगों की तरह का ही है। जर्मनी में लोग 'तीन' दिखाने के लिए अँगूठा, तर्जनी और मध्यमा का इस्तेमाल करते हैं।

बस, इसी फर्क की वजह से ब्रिटिश जासूस को बलिदान देना पड़ा।

यह किस्सा सिर्फ किस्सा है या सच्ची घटना, यह तो कहा नहीं जा सकता। लेकिन गिनने के लिए अँगुलियों का इस्तेमाल हरेक समाज और विभिन्न संस्कृतियों में काफी पहले से किया जाता रहा है। शायद तरीके ज़रूर थोड़े-बहुत फर्क रहे होंगे।

गिनती की शुरुआत

हम सभी को अंक और संख्याएँ एकदम बचपन से ही सिखाई जाने लगती हैं। लेकिन यह एक अमूर्त अवधारणा है। देखिए न, आप तीन अमरूद या तीन किताबें – ऐसा कह भी सकते हैं और इन चीज़ों को इकट्ठा करके दिखा भी सकते हैं। लेकिन आप तीन तालियों को कैसे दिखा सकते हैं? हम ताली बजा भी सकते हैं और गिन भी सकते हैं लेकिन दिखा नहीं सकते। इसके बावजूद हम इन सभी में जो समानता

है यानी 'तीन', उसे समझ सकते हैं। जब 'तीन' सिर्फ बोला जाए तब उसका कोई मतलब नहीं है, 'तीन' कुछ होना चाहिए। 'तीन' एक अमूर्त अवधारणा है। किसी तीन चीज़ों के समूह को 'तीन' नाम देना और उसे 'तीन' चिन्ह से दर्शाना, यह बात हमें आँगनवाड़ी या पहली कक्षा में बताई जाती है। यह बात भले ही पहली कक्षा की लगती हो लेकिन यहाँ तक पहुँचने में इन्सान को शायद हज़ारों साल का समय लगा है।

कुछ गिनना हो तो उसे मन में गिनने की बजाय किसी ठोस वस्तु की मदद से गिनना आसान होता है। इस काम के लिए यहाँ-वहाँ कुछ खोजने की ज़रूरत भी नहीं, हमारी अँगुलियाँ तो सदैव हमारे साथ ही हैं! इसीलिए गिनने के लिए शुरू से ही अँगुलियों का इस्तेमाल किया जाने लगा। हो सकता है, इसकी शुरुआत इन्सानों के अलग-अलग झुण्डों में अलग-अलग तरीकों से हुई हो। इसलिए अभी भी गिनती के फर्क-फर्क तरीके प्रचलन में हैं।

गिनते समय अँगुलियों को खोलते जाना है या बन्द करते जाना है, इसे किस क्रम से करना है, किस तरीके से करना है – इसमें आप ढेर सारी विविधताएँ देख सकते हैं। इसी वजह से शायद विविध समाजों या संस्कृतियों में गणित का विकास भी अलग-अलग तरीके से हुआ है।

गिनने में अँगुलियों का इस्तेमाल

हमारे यहाँ ज़्यादातर लोग गिनने के लिए सबसे पहले अपने हाथ की सभी अँगुलियों को खोल लेते हैं, फिर गिनते हुए एक-एक अँगुली बन्द करते जाते हैं। एक पंजे के बाद दूसरे पंजे की अँगुलियों के साथ भी यही करते हैं। इस तरह अँगुलियों से गिनने की सीमा आ जाती है यानी हम दस तक गिन पाते हैं।

कुछ जगहों पर दोनों पंजों की 10 बन्द अँगुलियों को एक-एक कर खोलते हुए आगे गिनते जाते हैं। यानी 20 तक गिन लेते हैं।

चित्र-3: प्राचीन सुमेरियन सभ्यता के लोग अपनी अँगुलियों के खण्ड जिन्हें पोर भी कहते हैं, का उपयोग करके बारह-बारह की गिनती करते थे।

प्राचीन सुमेरियन सभ्यता में (5000 साल पहले) एक फर्क तरीके से अँगुलियों को गिना जाता था।

चित्र में दिखाए अनुसार दाहिना या बायाँ पंजा खुला रखिए और अँगूठे को मोड़कर गिनना है। आपने ध्यान दिया होगा कि अँगुली जहाँ-जहाँ मुड़ती है, वहाँ गहरी लकीरें बनी होती हैं। इन्हें पोर भी कहते हैं। छंगुली, अनामिका, मध्यमा, तर्जनी पर कुलमिलाकर ऐसे 12 पोर होते हैं। इनमें से हरेक अँगुली के पोर तक अँगूठा पहुँच जाता है और 12 तक गिनना आसान हो जाता है। 12 तक की गिनती पूरी होते जाने पर, अपने दूसरे पंजे की एक-एक अँगुली को बतौर याददाश्त बन्द करते जाना है। इस तरह एक-एक अँगुली बन्द करते हुए 60 तक गिना जा सकता है।

अँगुलियों से गिनने की एक सीमा थी। यदि इससे ज़्यादा बड़ा कुछ गिनना हो या समय को मापना हो तो क्या करें? इसके लिए उस समय के इन्सान ने आसपास मौजूद चीज़ों को इस्तेमाल करना शुरू किया होगा। मान लीजिए, इन्सानों के किसी एक झुण्ड को किन्हीं दो घटनाओं के बीच के दिन गिनना है, इसके लिए हरेक दिन के लिए एक-एक पत्थर रखना या मृत जानवर की हड्डी पर एक-एक निशान लगाना जैसी कुछ शुरुआत हुई होगी।

मान लीजिए, उस झुण्ड को हमारी ही तरह अँगुलियों से 10 तक गिनने का तरीका आता है। तो, वे एक-एक करके 10 पत्थर रखते जाएँगे। आगे की गिनती के लिए फिर एक-एक पत्थर रखते जाएँगे। उदाहरण के लिए, उन्हें 39 बताना हो तो वे 10-10 पत्थरों के तीन ढेर और नौ पत्थरों का एक ढेर बनाएँगे। तो, यह 10 आधारित (Base Ten) पद्धति हुई।

चित्र-4: प्रागैतिहासिक लेखा-जोखा? निएंडरथल द्वारा लकड़बग्घे की हड्डी पर बनाए गए निशान शायद संख्यात्मक जानकारी दर्ज करने के लिए किए गए होंगे।

बेबीलोन से आज तक की विरासत

सुमेरियन लोगों की तरह ही 2000 साल ईसा पूर्व में बेबीलोन सभ्यता विकसित हुई। उनका गिनने का तरीका भी सुमेरियन लोगों की तरह अँगुलियों के पोरों से गिनने का था। एक पंजे से एक बार में 12 तक गिन सकते हैं इसलिए 12 और 60 को विशेष महत्व दिया गया। उनका गिनने का तरीका 60 आधारित था। 60 का एक और फायदा यह था कि साठ के पहाड़े में 360 आता है और उस दौर में बेबीलोन के लोग एक साल को 360 दिन का मानते थे। शायद इसलिए उन्हें खगोलशास्त्र में तरक्की करने में आसानी हुई। पूरा वृत्त 360 डिग्री का, साल में 12 महीने, 12 घण्टे का दिन, 60 मिनट का एक घण्टा। इसे हम आज भी इस्तेमाल करते हैं।

समय के साथ बेबीलोन की सभ्यता का खात्मा हो गया। ग्रीक साम्राज्य का उदय हुआ। ग्रीक लोगों ने काफी चीज़ों और परम्पराओं को बेबीलोन सभ्यता से अपनाया। आगे चलकर रोम और अँग्रेज़ों ने भी उसे जारी रखा। भारत ने आज़ादी के बाद मैट्रिक पद्धति को अपनाया। फिर भी अभी भी केले दर्जन के भाव से खरीदे जाते हैं।

काल के प्रवाह में दुनिया के अलग-अलग हिस्सों में जैसे-जैसे इन्सान तरक्की करता गया वैसे-वैसे उन इलाकों में मापन की विविध पद्धतियाँ विकसित होती गईं। इनमें से कुछ पद्धतियाँ समय के साथ विलुप्त हो गईं तो कुछ पद्धतियों ने दुनियाभर में अपनी धाक जमा ली।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

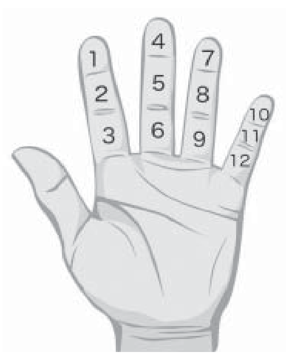

बिजली – अच्छी, बुरी और खतरनाक

बिजली दुर्घटनाओं का विश्लेषण और रोकथाम के उपाय

श्रीकुमार नहालुर और वर्धन गुप्ता

हमारी ज़िन्दगी में बिजली इतनी सहजता से जुड़ गई है कि हम अक्सर उसकी ताकत और संरचना पर ध्यान नहीं देते। मात्र एक स्विच दबाकर हम बिजली से अपने लिए ज़रूरी काम ले लेते हैं। आम तौर पर बिजली से हमारा लेना-देना एक खराब बल्ब बदलने या बिजली कम्पनी का बिल भरने तक ही सीमित रहता है। यह बिजली कम्पनी पूरे नेटवर्क का निर्माण और रख-रखाव करती है, बिजली कनेक्शन देती है, समय-समय पर मीटर की रीडिंग लेकर बिजली की खपत दर्ज करती है और बिल जारी करती है। जब कोई गम्भीर समस्या होती है, तो हम स्थानीय इलेक्ट्रिशियन को बुलाते हैं। बिजली गुल होने या बिल अधिक आने जैसी स्थिति में कुछ लोग कम्पनी से शिकायत करने भी चले जाते हैं।

हम सभी किसी-न-किसी रूप में बिजली से जुड़े हुए हैं। एक उपभोक्ता के रूप में, हमारे अधिकांश दैनिक कार्य चाहे वे घर, खेत या दुकान में हों, बिजली की सहायता से ही सम्भव हो पाते हैं, जैसे रोशनी करना, पानी की मोटर चलाना, पंखा, टेलीविज़न, फ्रिज, मिक्सर-ग्राइंडर इत्यादि का उपयोग करना या मोबाइल चार्ज करना। कारखाने, होटल, अस्पताल, पंचायतें और रेलवे जैसी संस्थाएँ भी ज़रूरी सामान और महत्वपूर्ण सेवाएँ प्रदान करने के लिए बिजली पर निर्भर रहती हैं। इस प्रकार, बिजली आधुनिक जीवन का एक महत्वपूर्ण और अनिवार्य हिस्सा बन चुकी है।

दूसरी ओर, हम कोयले पर आधारित बिजली उत्पादन के गम्भीर दुष्प्रभावों से भी परिचित हैं, जैसे स्थानीय प्रदूषण और वैश्विक जलवायु परिवर्तन। भारत में कुल बिजली उत्पादन का लगभग तीन-चौथाई हिस्सा कोयले पर निर्भर है। वर्तमान में, सौर और पवन ऊर्जा की ओर जो बदलाव हो रहा है, उससे इन हानिकारक प्रभावों को कुछ हद तक सीमित करने की उम्मीद है। हालाँकि, वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के सामने कई चुनौतियाँ भी हैं, क्योंकि इनसे बिजली उत्पादन के लिए बहुत अधिक ज़मीन की आवश्यकता होती है और इन स्रोतों से लगातार बिजली उपलब्ध नहीं हो पाती।

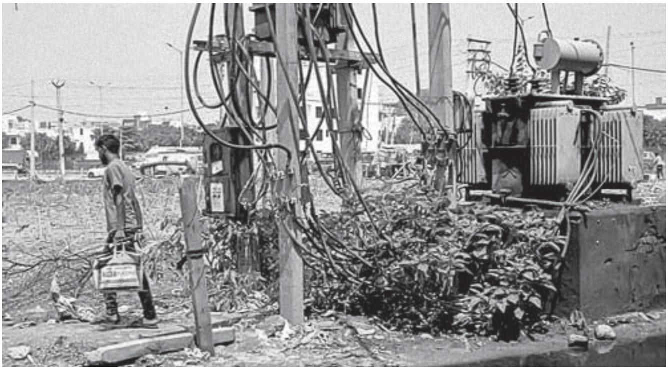

चित्र-1: खराब स्थिति में रखा गया, असुरक्षित विद्युत ट्रांसफॉर्मर।

दूसरी ओर, अगर बिजली का उपयोग सावधानी से न किया जाए, तो इसके खतरनाक दुष्परिणाम हो सकते हैं। इनमें सबसे गम्भीर है, बिजली से होने वाली दुर्घटनाएँ, जो हर साल देशभर में कई लोगों की जान ले लेती हैं और भारी मात्रा में सम्पत्ति को नुकसान पहुँचाती हैं। यह समझना ज़रूरी है कि ये दुर्घटनाएँ क्यों होती हैं और इन्हें कैसे कम किया जा सकता है। यह लेख इसी विषय पर आधारित है। शुरुआत करते हैं कुछ 'बिजली के लिहाज़ से खतरनाक' स्थानों पर नज़र डालकर।

चित्र-1 एक भारतीय कस्बे में लगे बिजली के ट्रांसफॉर्मर का फोटो है। यह ट्रांसफॉर्मर ज़मीन के बहुत पास रखा हुआ है। इससे जुड़ी तारें नीचे लटकी हुई हैं और उनमें कई जोड़ हैं। ट्रांसफॉर्मर के पास कोई व्यक्ति या जानवर गलती से किसी नंगे तार को छू ले, तो उसे बिजली का झटका लग सकता है। ट्रांसफॉर्मर अधिक गर्म होकर आग भी पकड़ सकता है, जिससे आसपास मौजूद लोग गम्भीर दुर्घटना का शिकार हो सकते हैं।

चित्र-2 कृषि क्षेत्र में लगे एक

चित्र-2: खेत में खतरनाक रूप से झुका हुआ बिजली का खम्भा।

चित्र-3: *पेड़ के बहुत पास लगा बिजली का खम्भा।*

बिजली के खम्भे को दिखाता है। खम्भा एक खतरनाक कोण पर झुका हुआ है, जिससे तार नीचे लटक गए हैं। खम्भा किसी भी समय गिर सकता है, जिससे यह स्थान बिजली से जुड़ी दुर्घटनाओं के लिए बेहद असुरक्षित बन गया है।

चित्र-3 में एक औद्योगिक क्षेत्र में स्थित धातु के विद्युत खम्भे को दिखाया गया है। यह एक ऊँचे पेड़ के बहुत पास लगा हुआ है, जिसकी शाखाएँ बिजली के तारों को छू रही हैं। तेज़ हवा के कारण तार हिलकर खम्भे से टकरा सकते हैं, जिससे इस धातु के खम्भे को स्पर्श करने के खतरनाक परिणाम हो सकते हैं। तार कभी भी टूटकर नीचे गिर सकते हैं। ऐसे बिजली के खम्भे, जो पेड़ों के पास हों या जिन पर बेलें फैली हों, हमारे आसपास कई जगहों पर अक्सर दिखाई दे जाते हैं।

चित्र-4 में एक कृषि पम्पसेट का स्विचबोर्ड दिखाया गया है, जो ज़मीन पर रखा हुआ है और जिसमें कई खुले हुए सुचालक (कंडक्टर) नज़र आ रहे हैं। इनमें से किसी को भी छूने पर बिजली का झटका लग सकता है।

चित्र-4: ज़मीन पर रखा हुआ कृषि पम्प का स्विचबोर्ड।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि हमारे आसपास बहुत-सी ऐसी जगहें पाई जाती हैं जो 'बिजली के लिहाज़ से खतरनाक' हैं। इन खतरों के गम्भीर परिणाम हमें देशभर से आए हालिया समाचारों में देखने को मिलते हैं।

- अगस्त 2022 में, एक अस्पताल में जनरेटर में आग लगने से आठ लोगों की मौत हुई और 13 घायल हुए।
- सितम्बर 2024 में, दो स्कूली बच्चों की पानी की टंकी से पानी भरते समय बिजली के झटके से मौत हो गई। हादसा तब हुआ जब पास से गुज़रती बिजली की लाइन टूटकर पानी की टंकी के पास गिर गई।
- अक्टूबर 2024 में, एक किसान की

चित्र-5 में एक तीन-पिन सॉकेट दिखाया गया है जो ज़मीन के बहुत पास लगा हुआ है। इसमें तीन मल्टीप्लग जुड़े हुए हैं और उन मल्टीप्लग में पाँच उपकरण लगे हैं। इनमें से एक में नंगे तार हैं और दो में प्लग के धातु वाले हिस्से खुले हुए हैं। सॉकेट के पास कपड़े का परदा, लकड़ी की खाट और अखबार रखे हुए हैं। यदि कोई बच्चा किसी खुले हिस्से या तार को छू ले तो उसे बिजली का झटका लग सकता है। प्लग या तारों से निकली चिंगारी अखबार, परदे या खाट पर गिरकर आग भी लगा सकती है।

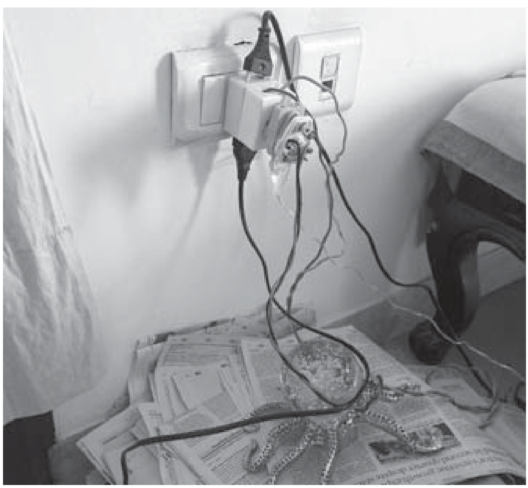

चित्र-5: एक प्लग से जुड़े कई उपकरण।

चित्र-6: देशभर में करंट लगने से होने वाली मृत्यु की कुछ खबरें।

मौत तब हो गई जब वह पम्प को बिजली की लाइन से जोड़ रहा था। उसे गलतफहमी थी कि 12 घण्टे की बिजली कटौती चल रही है और लाइन में करंट नहीं है।

- जनवरी 2025 में, एक लड़के की मौत उस समय हुई जब वह अपनी पतंग निकालने की कोशिश कर रहा था जो ट्रांसफॉर्मर के तारों में फंस गई थी।
- मार्च 2025 में, एक समाचार था कि किसानों ने बिजली विभाग से दिन के समय बिजली बन्द करने का अनुरोध किया है, क्योंकि यह गेहूँ की कटाई का समय होता है। और खेतों के ऊपर से गुज़रते बिजली के झुके हुए तार बहुत खतरनाक हैं, खासकर तब जब वे टूटकर गिर सकते हैं।

ऐसे कई समाचार देश के अलग-अलग हिस्सों से आते हैं, जो हमें सोचने पर मजबूर करते हैं कि बिजली के हादसे कहाँ होते हैं, इनके शिकार कौन लोग होते हैं, आखिर ये हादसे क्यों होते हैं, और हम क्या कर सकते हैं ताकि ऐसे दुखद हादसों को कम किया जा सके?

यह लेख इन्हीं सवालों की पड़ताल करने की कोशिश करता है। सबसे पहले हम बिजली से जुड़ी आम दुर्घटनाओं पर एक संक्षिप्त नज़र डालेंगे, और फिर एक-एक करके इन सवालों पर बात करेंगे।

बिजली के हादसे व उनका प्रभाव

बिजली से होने वाले हादसे तीन प्रकार के होते हैं - करंट ले जाने वाले खुले तारों को छूने से लगने वाला झटका, बिजली से सम्बन्धित समस्याओं के कारण लगने वाली आग और तीसरा, बिजली गिरना, जो एक प्राकृतिक घटना है। इन हादसों से इन्सानों और जानवरों, दोनों को गम्भीर क्षति हो सकती है या जान भी जा सकती है। आग लगने और बिजली गिरने से सम्पत्ति का नुकसान भी हो सकता है।

बिजली का झटका

बिजली का झटका सबसे आम दुर्घटना है जो तब लगता है जब शरीर से होकर करंट ज़मीन की ओर बहता है। ऐसा तभी होता है जब कोई व्यक्ति किसी करंट वाले तार को छू ले। झटके की तीव्रता इस बात पर निर्भर करती है कि शरीर से कितना करंट गुज़र रहा है। इसे ओह्म के नियम से समझा जा सकता है:

करंट = वोल्टेज / रेज़िस्टेंस (प्रतिरोध)

विद्युत धारा को एम्पियर (Ampere), विद्युत विभव को वोल्ट (Volt) और प्रतिरोध को ओह्म (Ohm) में मापा जाता है। विद्युत झटका शरीर के माध्यम से गुज़रने वाली धारा के प्रवाह के कारण लगता है, और बहुत कम मात्रा में बहने वाली विद्युत धारा भी मनुष्य को गम्भीर झटका दे

तालिका 1: करंट और मानव शरीर पर उसका असर

मिलीएम्पियर (mA) में करंट	मानव शरीर पर असर
1	झनझनाहट महसूस होना
1 से 5	हल्का झटका
5 से 20	दर्दनाक झटका
20 से 50	बहुत तेज़ दर्द, मांसपेशियों पर नियंत्रण खोना जिससे चोट लग सकती है, मृत्यु की सम्भावना भी होती है
50 से अधिक	साँस या हृदय बन्द होने से मृत्यु

नोट: 1 मिलीएम्पियर (1mA) = एक एम्पियर का हज़ारवाँ (1/1000 A) हिस्सा।
दिए गए आँकड़े और उनके प्रभाव अनुमानित हैं।

सकती है, जैसा कि तालिका-1 में दर्शाया गया है।

जब कोई व्यक्ति बिजली के तार को छूता है, तो उसके शरीर से कितना करंट गुज़र सकता है, इसका अनुमान लगाने के लिए हमें वोल्टेज और प्रतिरोध जानना ज़रूरी होता है। ज़्यादातर उपभोक्ताओं के यहाँ, तार और ज़मीन के बीच का विद्युत विभव 240 वोल्ट होता है। मानव शरीर की त्वचा अगर सूखी हो तो उसका प्रतिरोध बहुत ज़्यादा होता है, करीब 1,00,000 ओह्म। लेकिन शरीर का अन्दरूनी हिस्सा लगभग 60% पानी से बना होता है, जिसका प्रतिरोध सिर्फ 300 ओह्म तक हो सकता है। जब कोई व्यक्ति ज़मीन पर खड़ा होकर बिजली के तार को छूता है, तो करंट के प्रवाह के दो सम्पर्क बिन्दु होते हैं – हाथ और पैर। अगर त्वचा सूखी हो, तो शरीर से लगभग 1 से 2 मिलीएम्पियर तक का करंट गुज़र सकता है, जिससे हल्का झटका लगता है।

अगर हाथ या पैर गीले हों, या शरीर पर कहीं चोट हो, तो त्वचा का प्रतिरोध कम हो जाता है। वहीं, अगर व्यक्ति ने रबर के दस्ताने या चप्पल-जूते पहने हों, तो करंट के रास्ते में प्रतिरोध ज़्यादा होगा, जिससे करंट कम गुज़रेगा और झटका हल्का लगेगा।

अगर शरीर का सिर्फ एक हिस्सा बिजली के तार से छूता है (जैसे अगर कोई तार को पकड़कर लटक रहा हो), तो करंट का पूरा रास्ता नहीं बनता यानी करंट को ज़मीन तक पहुँचने का रास्ता नहीं मिलता

(सर्किट पूरी नहीं होती) और झटका नहीं लगता। आपने पक्षियों को बिजली के तारों पर बैठे देखा होगा – उनके दोनों पैर एक तार पर होते हैं, लेकिन ज़मीन से सम्पर्क नहीं होता, इसलिए उन्हें करंट नहीं लगता। एक और ज़रूरी बात कि विद्युत विभव के 500 वोल्ट से ज़्यादा होने पर त्वचा का उच्च प्रतिरोध कम हो जाता है। यही कारण है कि हाई टेंशन तारों (जैसे 11,000 वोल्ट या उससे अधिक) के सम्पर्क में आना बेहद खतरनाक होता है।

यह भी सही है कि करंट से होने वाला नुकसान व्यक्ति-दर-व्यक्ति अलग-अलग होता है और यह इस पर भी निर्भर करता है कि करंट शरीर में किस रास्ते से बहा। जब करंट शरीर से होकर गुज़रता है, तो यह हमारी मांसपेशियों और तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करता है। इसके कारण मांसपेशियों पर हमारा नियंत्रण नहीं रहता यानी शरीर की कुछ हरकतें अपने-आप होने लगती हैं, जिन्हें हम रोक नहीं पाते। इसे अनैच्छिक क्रिया कहा जाता है। उदाहरण के लिए, अगर कोई व्यक्ति गलती से करंट वाले तार को छू ले, तो उसकी उंगलियाँ सिकुड़ एवं अकड़ सकती हैं जिससे वह तार को छोड़ नहीं पाएगा। या फिर अचानक शरीर झटका खा सकता है, जिससे व्यक्ति गिर सकता है या झटके से किसी चीज़ से टकरा सकता है। इस तरह की अनियंत्रित हरकतों से शरीर को चोट लग सकती है, जैसे गिरने से हड्डी टूटना, सिर या पीठ में चोट लगना आदि। यह सब जानवरों पर भी कुछ हद तक लागू होता है, लेकिन दुर्घटना के परिणाम उनके शरीर की बनावट पर भी निर्भर करते हैं।

विद्युत समस्याओं से उत्पन्न आग

बिजली से जुड़ी समस्याओं के कारण चिंगारी या खूब गर्मी भी पैदा हो सकती है, जिससे बड़े पैमाने पर आग लग सकती है। आपने देखा होगा कि कभी-कभी स्विच ऑन या ऑफ करते समय चिंगारी निकलती है, या जब बिजली के तार आपस में या पेड़ों से टकराते हैं तब भी चिंगारी निकलती है। बहुत अधिक कनेक्शन, जिनमें से कुछ ढीले हों (जैसा कि चित्र-5 में दिखाया गया है), चिंगारी उत्पन्न कर सकते हैं। जब तारों और उपकरणों में लम्बे समय तक अधिक करंट प्रवाहित होता है, या वे सही ढंग से ठण्डे नहीं हो पाते, या वे खराब स्थिति में होते हैं, तो वे अधिक गर्म हो जाते हैं। ऐसी जगहों पर जलने जैसी गन्ध या धुआँ निकलता है – इन्हें हॉट स्पॉट्स कहा जाता है। अगर ऐसे स्थानों के पास सूखी घास, कागज़ या कपड़े जैसी आसानी-से जलने वाली चीज़ें हों, तो आग लग सकती है।

उदाहरण के लिए, सड़क किनारे लगे विद्युत ट्रांसफॉर्मरों (जैसा कि

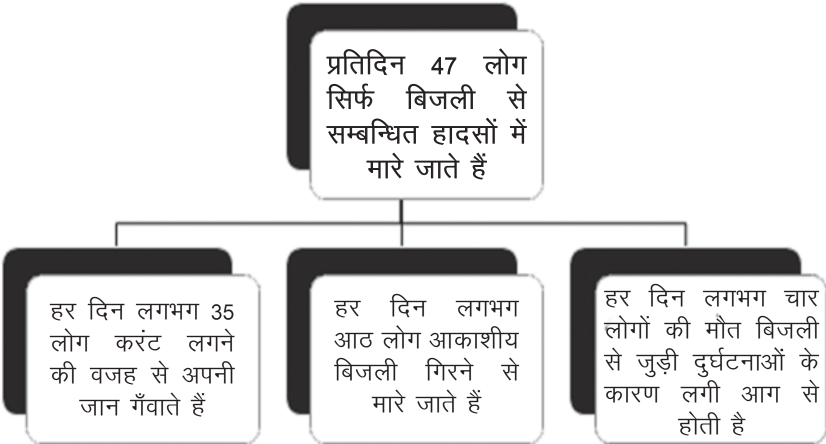

चित्र-7: *हिन्दुस्तान में प्रतिदिन विद्युत दुर्घटनाओं में होने वाली मौतें।*

चित्र-1 में दिखाया गया है) में आग लगने या विस्फोट की घटनाएँ होती ही रहती हैं। मोबाइल चार्जर या मोबाइल फोन भी कभी-कभी बहुत गर्म होकर फट जाते हैं। अस्पतालों, सिनेमा हॉल, कोचिंग सेंटर्स, हॉस्टलों, घरों और दफ्तरों में लगने वाली आग की कई घटनाएँ ऐसे ही विद्युत दोषों के कारण होती हैं, जिनसे जान-माल का भारी नुकसान होता है।

आकाशीय बिजली

यह तो सबको पता ही है कि आकाशीय बिजली एक प्राकृतिक घटना है, जिसमें बिजली बादलों के बीच या बादलों से ज़मीन तक बहती है। बादलों से ज़मीन तक गिरने वाली बिजली सबसे ज़्यादा खतरनाक होती है। बिजली गिरने पर वोल्टेज लाखों वोल्ट और करंट हज़ारों एम्पियर तक हो सकता है। तुलना करें तो हमारे घरों में 240 वोल्ट की सप्लाई होती है और एक पंखा सिर्फ 0.3 एम्पियर करंट से चलता है। बिजली गिरने के रास्ते में तापमान हज़ारों डिग्री सेंटीग्रेड तक पहुँच जाता है, जो सूर्य की सतह से भी अधिक गर्म होता है!

बिजली बहुत कम समय, एक सेकण्ड से भी कम, के लिए गिरती है। लेकिन इतना अधिक करंट, वोल्टेज और तापमान होने के कारण यह पेड़ों एवं मकानों को जला सकती है और इन्सानों व जानवरों की जान ले सकती है। अगर आकाशीय बिजली विद्युत-तारों पर गिरती है, तो वह ज़रूरत से कहीं ज़्यादा वोल्टेज हमारे घरों तक पहुँचा सकती है, जिससे वायरिंग और उपकरण जल सकते हैं।

एक सामान्य नियम यह है कि यदि बिजली चमकने के कुछ ही सेकण्ड के भीतर गर्जना सुनाई दे, तो इसका मतलब है कि बिजली आपके पास ही कहीं गिरी है और यह खतरनाक हो सकती है। ऐसे में सबसे सुरक्षित उपाय यही है कि आप घर के भीतर रहें और ऊँची इमारतों या ढाँचों के पास न जाएँ।

विद्युत दुर्घटनाओं की गम्भीरता

भारत में हर दिन औसतन 700 लोग विभिन्न प्रकार की दुर्घटनाओं जैसे सड़क दुर्घटनाएँ, ऊँचाई से गिरना, डूबना और बिजली से होने वाली दुर्घटनाओं में अपनी जान गँवाते हैं। इनमें से हर दिन लगभग 47 लोग सिर्फ बिजली से सम्बन्धित हादसों में मारे जाते हैं। चित्र-7 में प्रतिदिन होने वाली औसत विद्युत दुर्घटनाओं का विवरण दिया गया है।

इससे स्पष्ट है कि बिजली से होने वाली दुर्घटनाओं में सबसे अधिक मौतें करंट लगने के कारण होती हैं। यह लेख मुख्य रूप से करंट से होने वाली दुर्घटनाओं और मौतों पर केन्द्रित है, क्योंकि इनमें से अधिकांश लोग परिवार के कमाने वाले सदस्य होते हैं।

दुर्भाग्यवश, ये हादसे केवल इन्सानों तक ही सीमित नहीं हैं। हर साल 10,000 से अधिक पशु भी बिजली से जुड़ी दुर्घटनाओं में मारे जाते हैं। पालतू जानवरों की मौत भी कई लोगों की आजीविका पर गम्भीर असर डालती है।

दुर्घटनाएँ कहाँ और प्रभावित कौन?

आइए, यह समझने की कोशिश करें कि बिजली से होने वाले अधिकतर हादसे किन भौगोलिक और विद्युत स्थानों पर होते हैं, और इनके शिकार कौन लोग होते हैं। भौगोलिक दृष्टि से देखा जाए तो इन घटनाओं का विश्लेषण राज्यों, ज़िलों, और ग्रामीण या शहरी इलाकों के आधार पर किया जा सकता है। आँकड़े देखकर यह समझ में आता है कि करंट लगने से जुड़ी अधिकतर दुर्घटनाएँ ग्रामीण क्षेत्रों से सामने आती हैं। बिजली सम्बन्धी समस्याओं के कारण लगने वाली आग की ज़्यादातर घटनाएँ शहरी क्षेत्रों में होती हैं, सम्भवतः इसलिए क्योंकि शहरों में भीड़भाड़ वाले सार्वजनिक स्थानों की संख्या अधिक होती है।

विद्युत-स्थान को समझने के लिए यह जानना ज़रूरी है कि बिजली उपभोक्ता तक पहुँचती कैसे है। चित्र-8 उपभोक्ता तक बिजली पहुँचने की प्रक्रिया का एक संक्षिप्त ब्यौरा प्रस्तुत करता है।

बिजली का उत्पादन देशभर में फैले बिजलीघरों (पावर प्लांट्स) में होता है। इसके बाद इसे बहुत ऊँचे टावरों पर लगी ट्रांसमिशन लाइनों के ज़रिए सैकड़ों किलोमीटर तक पहुँचाया जाता है। इन लाइनों में

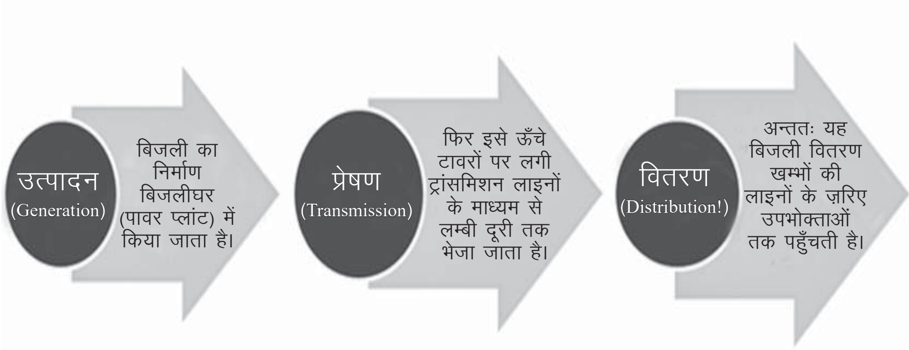

चित्र-8: *बिजली उपभोक्ता तक कैसे पहुँचती है?*

वोल्टेज बहुत ही अधिक होता है – 2,20,000 या 4,00,000 वोल्ट। ट्रांसमिशन लाइनों को वितरण उपकेन्द्रों (डिस्ट्रिब्यूशन सबस्टेशनों) से जोड़ा जाता है, जहाँ वोल्टेज को घटाकर कम स्तर (जैसे 33,000, 11,000 या 415 वोल्ट) पर लाया जाता है। इसके बाद बिजली वितरण लाइनों के माध्यम से बिजली के खम्भों से होते हुए उपभोक्ताओं तक पहुँचती है। इस प्रकार, बिजली की आपूर्ति की प्रक्रिया तीन प्रमुख चरणों में बँटी होती है – उत्पादन (जहाँ बिजली का निर्माण होता है), प्रेषण (जहाँ बिजली को बड़े पैमाने पर लम्बी दूरी तक पहुँचाया जाता है), और वितरण (जहाँ बिजली उपभोक्ताओं को उपलब्ध कराई जाती है)।

पिछले वर्षों में उत्पादन और प्रेषण से जुड़ी दुर्घटनाओं में काफी कमी आई है। आज बिजली से जुड़ी लगभग 60 से 70 प्रतिशत दुर्घटनाएँ वितरण प्रणाली वाले हिस्से में होती हैं। ये घटनाएँ आम तौर पर कम वोल्टेज (11,000, 415 या 240 वोल्ट) पर और अत्यन्त छोटे उपभोक्ता स्थलों पर घटित होती हैं।

हादसों के शिकार कौन?

यह देखा गया है कि ज़्यादातर मौतें सार्वजनिक जगहों और छोटे उपभोक्ताओं के स्थानों पर घटती हैं। छोटे उपभोक्ता से हमारा मतलब है, छोटे घरों में रहने वाले लोग, छोटी दुकानें चलाने वाले दुकानदार, और खेतों में पम्पसेट इस्तेमाल करने वाले किसान।

राज्यों के बीच मौतों की संख्या के वितरण में काफी फर्क है। इसका कारण जनसंख्या में अन्तर, बिजली नेटवर्क का फैलाव एवं उसकी गुणवत्ता, और सुरक्षा को लेकर जनजागरूकता है। दस राज्य – मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, उत्तरप्रदेश, आंध्रप्रदेश, बिहार, कर्नाटक, गुजरात, तमिलनाडु और तेलंगाना, कुल मौतों का 80% हिस्सा रिपोर्ट करते हैं।

भारत में बिजली से होने वाले हादसों में मौतों की संख्या बहुत ज़्यादा है। इसकी एक वजह देश की बड़ी जनसंख्या भी हो सकती है। देशों या राज्यों के बीच तुलना करने के लिए 'फेटैलिटी रेट' (मृत्यु दर) नामक एक मानक इस्तेमाल किया जाता है। इसका मतलब है – प्रति एक लाख जनसंख्या पर साल में कितनी मौतें होती हैं। उपलब्ध जानकारी के अनुसार, भारत में बिजली के झटकों और आग लगने से होने वाली मृत्यु दर लगभग 1 है। इसका मतलब है कि हर साल, हर एक लाख लोगों में से एक व्यक्ति की मौत बिजली से जुड़े हादसों में होती है।

अगर हम तुलना करें, तो विकसित देशों में यह दर बहुत कम है, अमेरिका और ब्रिटेन में यह केवल 0.03 है। विकासशील देशों में भी ब्राज़ील में यह दर 0.3 और दक्षिण अफ्रीका में 0.7 है। साफ है कि भारत की मृत्यु दर इन सभी देशों की तुलना में कहीं ज़्यादा है। भारत के विभिन्न राज्यों में भी जनसंख्या और मौतों की संख्या अलग-अलग होने के कारण यह दर बदलती रहती है। अलग-अलग राज्यों में यह मृत्यु दर 0.2 से लेकर 2.43 तक पाई गई है। तालिका में कुछ राज्यों की मृत्यु दर दर्शाई गई है – कुछ राज्यों की दर राष्ट्रीय औसत के करीब है, कुछ की काफी कम है और कुछ की बहुत अधिक।

भारत में मृत्यु दर: 1.04	
उत्तराखण्ड	0.29
पश्चिम बंगाल	0.36
पंजाब	0.97
कर्नाटक	1.04
छत्तीसगढ़	1.86
मध्य प्रदेश	2.43

देशों या राज्यों में हादसों की संख्या या मृत्यु दर अलग-अलग क्यों होती है, इसे समझने के लिए हमें यह जानना ज़रूरी है कि बिजली से जुड़े हादसे क्यों होते हैं और उन्हें कैसे रोका जा सकता है। अगला भाग इसी विषय पर केन्द्रित है।

जैसा पहले बताया गया है, बिजली के हादसों में हर साल लगभग 10,000 जानवरों की भी मौत होती है। इनमें ज़्यादातर घरेलू जानवर जैसे भैंस, गाय और बकरी होते हैं । जंगली जानवर भी बिजली के झटकों का शिकार बनते हैं। एक अनुमान के मुताबिक, 2010 से 2020 के बीच 1300 जंगली जानवरों की मौत बिजली के झटके से हुई। इनमें 500 हाथी, 220 फ्लेमिंगो, 150 तेंदुए और 46 बाघ शामिल थे।

हादसे क्यों और इन्हें रोकें कैसे?

पिछले हिस्से में झटका लगने, आग लगने और आकाशीय बिजली से

होने वाले हादसों के बारे में चर्चा की गई थी।

आकाशीय बिजली एक प्राकृतिक घटना है। इससे बचाव के लिए लाइटनिंग अरेस्टर लगाना और कुछ सावधानियाँ बरतना मददगार हो सकता है। लेकिन इस लेख में हम इस विषय पर विस्तार से चर्चा नहीं करेंगे। हमारा मुख्य ध्यान उन हादसों पर है जो करंट वाले तारों या बिजली की खराबियों के कारण होते हैं, क्योंकि ये ज़्यादातर इन्सानी लापरवाही से होते हैं और रोके जा सकते हैं।

- **करंट वाले तार (live wire) या खराब उपकरणों के सम्पर्क में आना**

लोग करंट वाले खुले तार (जिसे लाइव वायर कहा जाता है) के सम्पर्क में क्यों आते हैं? ऐसा आम तौर पर तब होता है जब बिजली का तार ज़मीन से छह फीट से कम ऊँचाई पर हो या बिजली का तार इमारत के बहुत पास से गुज़र रहा हो यानी इमारत की दीवार या छत से केवल तीन फीट या उससे कम दूरी पर। ऐसी स्थिति में अगर कोई व्यक्ति हाथ ऊपर उठाए या लोहे की सीढ़ी, छड़ या पाइप जैसी धातु की वस्तु लेकर चले, तो वह गलती से बिजली के तार के सम्पर्क में आ सकता है, जिससे करंट लगने का गम्भीर खतरा हो जाता है।

तार इतने नीचे क्यों लटकते हैं? इसके पीछे मुख्य कारण है बिजली विभाग की लापरवाही, जैसे खराब निर्माण या समय पर मरम्मत न किया जाना। साथ ही, कई बार तारों के पास इमारतों का निर्माण भी कर दिया जाता है, जबकि पंचायत या नगर पालिका को ऐसे निर्माण की अनुमति नहीं देनी चाहिए। अगर किसी वजह से कानून का उल्लंघन करके इमारत बना दी गई है और तार बहुत पास आ गए हैं, तो बिजली विभाग को तुरन्त तारों पर इंसुलेशन (रबर या प्लास्टिक कोटिंग) चढ़ा देना चाहिए, ताकि करंट लगने का खतरा कम हो। हालाँकि, बेहतर उपाय यही है कि तारों को किसी सुरक्षित दूरी पर शिफ्ट कर दिया जाए।

बिजली के खम्भों पर लगे ट्रांसफॉर्मर और स्विच को इतनी ऊँचाई पर लगाया जाना चाहिए कि कोई व्यक्ति आसानी-से उन्हें छू न सके, और उनमें कोई खुला धातु का हिस्सा न हो, जिससे गलती से करंट लगने का खतरा हो। ट्रांसफॉर्मर के चारों ओर मज़बूत बाड़ (फेंस) भी होनी चाहिए, ताकि न तो लोग और न ही जानवर उसके पास जा सकें।

करंट वाले तार के सम्पर्क में आना तब भी हो सकता है जब तार टूट जाए या खम्भा गिर जाए। ऐसी घटनाएँ आम तौर पर बिजली कम्पनी द्वारा खराब निर्माण या सही समय पर मरम्मत न होने के कारण होती हैं। कम्पनी की ज़िम्मेदारी है कि वह समय-समय पर यह जाँच करे कि

कहीं तार बहुत नीचे तो नहीं लटक रहे, किसी इमारत या पेड़ के बहुत पास तो नहीं हैं, कहीं उनमें ज़्यादा जोड़ (जॉइंट्स) तो नहीं हैं, तार बहुत पुराने तो नहीं हो गए हैं, खम्भे झुक तो नहीं रहे हैं, या किसी जोड़ से चिंगारी तो नहीं निकल रही है। इन खतरों को आस-पड़ोस के लोग भी देखकर बिजली विभाग को सूचित कर सकते हैं। ज़रूरी मरम्मत या तारों की जगह बदलने जैसे काम समय पर किए जाने चाहिए।

वाहनों में ऊँची चीज़ें ले जाना, या ट्रैक्टर-ट्रॉली, ट्रक या बस की छत पर बैठना भी खतरनाक हो सकता है, क्योंकि इससे व्यक्ति बिजली के तारों के बहुत पास आ सकता है। इसलिए जहाँ कहीं बिजली की लाइनें रास्तों पर से होकर जाती हैं, वहाँ खास सावधानी बरतनी चाहिए और ऐसी गतिविधियों से बचना चाहिए।

बिजली कम्पनी और आम जनता द्वारा सभी ज़रूरी सावधानियाँ बरतने के बावजूद, अगर किसी व्यक्ति या वस्तु का गलती से करंट वाले तार से सम्पर्क हो जाए, तो बिजली कम्पनी के पास तुरन्त बिजली की सप्लाई बन्द करने की व्यवस्था होनी चाहिए। अक्सर हादसे इसलिए और भी गम्भीर हो जाते हैं क्योंकि समय पर बिजली की सप्लाई बन्द नहीं की जाती।

उपभोक्ता स्थानों (जैसे घर, दुकान या कृषि पम्पसेट) पर हादसों को रोकने की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी खुद उपभोक्ता की होती है। बिजली की वायरिंग केवल प्रशिक्षित और योग्य इलेक्ट्रिशियन से ही करानी चाहिए। अगर कहीं से चिंगारी (स्पार्क) या धुआँ निकलता दिखे, तो तुरन्त मरम्मत कराना ज़रूरी है। स्विच और प्लग को ढककर बच्चों की पहुँच से दूर लगाया जाना चाहिए। एक ही प्लग पॉइंट में कई उपकरणों को जोड़ने (मल्टी-प्लग इस्तेमाल करने) से बचना चाहिए, क्योंकि इससे ओवरलोड और शॉर्ट सर्किट का खतरा बढ़ता है।

ज़्यादा बिजली की खपत करने वाले उपकरणों जैसे फ्रिज, वॉटर कूलर, गीज़र आदि के लिए तीन-पिन प्लग का ही इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसमें तीसरी और सबसे मोटी पिन को 'अर्थ पिट' से जोड़ना आवश्यक होता है। यह किसी खराब उपकरण के धातु वाले हिस्से को छूने पर झटका लगने की सम्भावना को कम करता है।

एक उपकरण होता है जिसे रेसिडुअल करंट सर्किट ब्रेकर (RCCB) कहते हैं, पहले इसे अर्थ लीकेज सर्किट ब्रेकर (ELCB) कहा जाता था। यह तब बिजली काट देता है जब भी वायरिंग में कोई खराबी होती है। ऐसे उपकरण को हर उपभोक्ता को, खासकर जहाँ कई बिजली के उपकरण हों, लगाना बेहतर होता है।

अगर किसी तरह की बिजली की मरम्मत करनी भी हो, तो सबसे पहले मेन स्विच को बन्द करना चाहिए। यह काम केवल प्रशिक्षित इलेक्ट्रिशियन से ही करवाना बेहतर होता है। अगर किसी वजह से आपको खुद कोई छोटा काम करना हो जैसे फ्यूज़ बदलना, बल्ब लगाना आदि तो पूरी सावधानी बरतें: मुख्य स्विच बन्द करें, सही औज़ारों का इस्तेमाल करें, रबर की चप्पल पहनें और नमी या गीले हाथों से बिलकुल काम न करें।

इतनी सावधानियाँ बरतने के बावजूद करंट लग सकता है। अगर आप किसी को करंट लगते हुए देखें, तो सबसे पहले बिजली की सप्लाई तुरन्त बन्द कर दें। अगर यह सम्भव न हो या इसमें समय लग रहा हो, तो लकड़ी, प्लास्टिक या किसी ऐसी ही अन्य कुचालक वस्तु का उपयोग करके उस व्यक्ति को बिजली के स्रोत से जितनी जल्दी हो सके, अलग करें। अगर करंट लगने के बाद व्यक्ति बेहोश हो जाए और अब तारों के सम्पर्क में न हो, तो तुरन्त उसे प्राथमिक उपचार देना चाहिए। इसके बाद बिना देरी किए अस्पताल ले जाना चाहिए।

- **बिजली से जुड़ी खराबियों के कारण आग लगना**

इस तरह की आग ज़्यादातर तब लगती है जब ज़्यादा लोड या ढीले सम्पर्क के कारण चिंगारी उत्पन्न होती है और आसपास सूखे पत्ते, कागज़, कपड़ा जैसी ज्वलनशील सामग्री मौजूद होती है। ट्रांसफॉर्मर ज़्यादा गर्म हो सकते हैं और उनके अन्दर का तेल आग पकड़ सकता है, जिससे विस्फोट हो सकता है।

बिजली कम्पनी को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि ट्रांसफॉर्मर उससे जुड़े सभी उपभोक्ताओं को बिजली देने में सक्षम हो यानी उस पर ओवरलोड न हो। इसके साथ ही, कम्पनी को नियमित रूप से ट्रांसफॉर्मर की देखरेख करनी चाहिए ताकि किसी भी चिंगारी, तेल रिसाव या ज़्यादा गर्म होने की स्थिति का पहले से पता लगाया जा सके। यदि लोग तारों या ट्रांसफॉर्मर से धुआँ या चिंगारी निकलती देखें, तो उन्हें बिजली कम्पनी को तुरन्त सूचना देनी चाहिए।

उपभोक्ता को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि बिजली के तार इस योग्य हों कि वे उपकरणों को सुरक्षित रूप से बिजली पहुँचा सकें, बिना ज़्यादा गर्म हुए। उन्हें किसी भी उपकरण में चिंगारी निकलने या गर्म होने पर तुरन्त सतर्क हो जाना चाहिए। अस्पताल, थिएटर, दफ्तर और बड़ी दुकानों जैसी जगह आग बुझाने वाले यंत्र और आपातकालीन निकास के रास्ते ज़रूर होने चाहिएँ।

क्या किया जाना चाहिए?

जैसे कि हमने देखा, बिजली से होने वाले हादसों की संख्या काफी

ज़्यादा है, और यह एक गम्भीर सामाजिक समस्या है, जो ज़्यादातर आम लोगों और छोटे उपभोक्ताओं को प्रभावित करती है। एक कहावत है: 'हादसे होते नहीं हैं, कराए जाते हैं'। यह बात बिजली हादसों पर भी लागू होती है। सरकार, बिजली कम्पनी, उपभोक्ता और आम लोग, सभी को यह समझना होगा कि मौजूदा हालात के लिए हर किसी की कुछ-न-कुछ ज़िम्मेदारी बनती है, और इसे सुधारने में भी सबकी भूमिका अनिवार्य है।

तथ्य यह है कि बिजली उत्पादन और ट्रांसमिशन के साथ-साथ कई उपभोक्ता स्थलों पर भी हादसों में कमी आई है - यह दिखाता है कि अगर ठान लें, तो हादसों को कम किया जा सकता है।

सबसे पहला कदम यह समझना है कि अगर सभी सम्बन्धित पक्ष सकारात्मक ढंग से अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी निभाएँ, तो हादसों को कम किया जा सकता है। यह आसान नहीं है और इसमें समय लगेगा, लेकिन इसकी शुरुआत करना अनिवार्य है। सरकार ने पहले भी ऐसे कार्यक्रम चलाए हैं जिनका लक्ष्य देश के हर घर तक बिजली पहुँचाना था। आज देश का लक्ष्य है कि 2070 तक कार्बन उत्सर्जन शून्य किया जाए, और इसके लिए कई कार्यक्रम चल रहे हैं। इसी तरह, बिजली से होने वाले हादसों को कम करने के लिए भी 'शून्य हादसे' (zero accidents) का एक स्पष्ट लक्ष्य होना चाहिए और सरकार को इसके लिए ठोस कार्यक्रम शुरू करने चाहिए।

बिजली कम्पनियों को यह सुनिश्चित करना चाहिए कि निर्माण कार्य अच्छी गुणवत्ता का हो और सुरक्षा की नियमित जाँच होती रहे। उन्हें यह भी समझने की ज़रूरत है कि हादसे क्यों हो रहे हैं। इसके लिए हादसों का विश्लेषण कर उनके मुख्य कारणों का पता लगाना ज़रूरी है। राज्य, ज़िला और ब्लॉक स्तर पर सुरक्षा को प्राथमिकता देने वाले अलग अधिकारी होने चाहिए, जिनकी ज़िम्मेदारी हो कि वे लोगों की सुरक्षा से जुड़ी चिन्ताओं को सुनें और उनके सुझावों को लागू करें।

फिलहाल, हादसों के शिकार लोगों या उनके परिवारों को मामूली मुआवज़ा देने की व्यवस्था है। जब तक हादसों में कमी नहीं आती, तब तक बिजली कम्पनियों को मानवीय दृष्टिकोण अपनाते हुए पीड़ितों के प्रति ज़्यादा सहानुभूति दिखानी चाहिए। उन्हें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि मुआवज़ा पाने की प्रक्रिया सभी पीड़ितों के लिए सरल और त्वरित हो। चूँकि ज़्यादातर बिजली कम्पनियाँ सरकारी हैं, इसलिए इन सभी उपायों को लागू करने के लिए सरकार को भी पहल करनी चाहिए और पूरा सहयोग देना चाहिए।

उपभोक्ताओं और आम लोगों को बिजली से जुड़ी खतरनाक जगहों या परिस्थितियों को लेकर ज़्यादा सतर्क और सावधान होना चाहिए। जब कोई उपकरण लगाना हो या मरम्मत करनी हो, तो पहले बिजली बन्द कर दें। गीले हाथों से या गीली ज़मीन पर खड़े होकर बिजली से जुड़ा कोई भी काम न करें। अगर आस-पड़ोस में कहीं बिजली से जुड़ा कोई खतरनाक स्थान दिखे, तो तुरन्त बिजली कम्पनी को इसकी जानकारी दें। यह जानकारी आप सीधे जाकर, मोबाइल ऐप के ज़रिए, या सामान्य हेल्पलाइन 1912 पर कॉल करके दे सकते हैं।

बिजली हादसे, जो बिजली के इस्तेमाल के साथ जुड़ा हुआ एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू हैं, उनसे निपटने के लिए हम सभी को मिलकर काम करना होगा।

आभार: यह लेख हमने बिजली सुरक्षा पर 'प्रयास ऊर्जा समूह', पुणे द्वारा चल रहे कार्य के आधार पर तैयार किया है। लेख की शुरुआती तैयारी के दौरान, हैदराबाद, पुणे, वालनचेरी और विशाखापट्टनम के कुछ हाई स्कूल छात्रों ने बिजली सुरक्षा से जुड़ी अपनी अहम बातें और मान्यताएँ हमारे साथ साझा कीं, जिनके लिए हम उनके शुक्रगुज़ार हैं। हम अपनी सहयोगी चेता सेठ को भी धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस लेख के लिए ज़रूरी आँकड़े उपलब्ध करवाए, और *एकलव्य* के साथियों का आभार जिनसे हमें प्रारम्भिक मसौदे पर उपयोगी सुझाव मिले।

श्रीकुमार नहालुर व वर्धन गुप्ता: प्रयास (ऊर्जा समूह) के साथ कार्यरत हैं, जो पुणे स्थित एक स्वैच्छिक संस्था है और ऊर्जा क्षेत्र में नीति तथा शासन से जुड़े पहलुओं पर काम कर रही है। अधिक जानकारी के लिए कृपया प्रयास (ऊर्जा समूह) की वेबसाइट देखें: https://energy.prayaspune.org/

अँग्रेज़ी से अनुवाद: निधि सोलंकी: दस वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रही हैं, मुख्य रूप से वैकल्पिक शिक्षा में, जिसमें पूछताछ-आधारित शिक्षा पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। 'आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल, भोपाल', 'अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन', 'एकलव्य फाउंडेशन', 'राजघाट बेसेंट स्कूल (कृष्णमूर्ति स्कूल)' और 'प्रकृति स्कूल, नोएडा' जैसी जगहों पर काम करने का अनुभव है। पक्षी देखना, प्रकृति में रहना और बच्चों के साथ काम करना पसन्द है।

लेख में उल्लेखित आँकड़ों और जानकारी के स्रोत जानने के लिए नीचे दी गई लिंक देखें या दिए गए QR code को स्कैन करें।

https://www.eklavya.in/resources/sandarbh-article-references/5395-sandarbh-160-electricity

चूहे, दीमक और आधारशिला का शिक्षाशास्त्र

अमित और जयश्री

चूहे आधारशिला के सबसे पुराने साथी रहे हैं। हॉस्टल चलाने वाले इस बात से सहमत होंगे कि हॉस्टल में बच्चों के साथ चूहे और कुत्ते भी बड़े होते रहते हैं। यहाँ पहले बत्तीस बच्चों के साथ यह अक्सर होता था कि सवेरे हॉल में इकट्‌ठे होते थे और कोई-न-कोई बात किसी बहाने से चल पड़ती थी। ऐसे में ही एक दिन किसी बच्चे ने, शायद चम्पा ने, कहा कि "मूँगफली की गरी में चूहे लगे हैं।" (फसल काटकर जब उसका ढेर लगाया जाता है, तो उस ढेर को गरी कहते हैं)। यह तो बहुत बड़ा नुकसान होगा। शिक्षकों ने भी नहीं बताई यह बात। "चलो, फिर आज यही काम कर लेते हैं। चूहे निकालते हैं।" सब एकदम जोश में आ गए। ऐसे ही एक झटके में दिन शुरू हो जाता था।

गरी को चूहों से बचाना

सब गरी के पास पहुँच गए। कुछ बच्चों ने हाथ में लकड़ी के डण्डे ले लिए कि चूहे निकलेंगे तो उन्हें मारेंगे। लेकिन चूहे बाहर कैसे निकलेंगे? बच्चों के शोर से शायद उन्हें अन्देशा हो ही गया होगा कि कुछ होने वाला है। कुछ बच्चों ने लकड़ियाँ गरी के नीचे घुसानी शुरू कर दीं। दिया और कुछ बच्चे, गरी से मूँगफली

चित्र-1: बच्चे दौड़कर गरी के पास पहुँचे और नीचे से चूहों को निकालने लगे।

निकालकर खाने लगे। थोड़ी ही देर में एक-दो चूहे भागते हुए दिखे लेकिन वे कहीं ज़मीन में घुस गए। गरी के नीचे एक दर बना रखा था उन्होंने। किसी ने सुझाया कि दर खोदते हैं और तुरन्त ही कुछ बच्चे लकड़ियों से दर की जगह खोदने लगे। दर को खोदते ही पता चला कि यह तो गरी से बाहर कहीं जा रहा है। वहाँ ज़मीन कड़क थी, इतनी आसानी-से नहीं खुद रही थी तो दो-तीन बच्चे गेंती ले आए।

अब पूरा माहौल एक खुदाई में परिवर्तित हो गया था। एक दर पकड़कर धीरे-धीरे उसे खोदने की बात हुई। यहाँ-वहाँ नहीं खोदना है, नहीं तो पता नहीं चलेगा कि दर कहाँ जा रहे हैं। अब पाँच-छः फीट लम्बी एक नाली दिखने लगी थी जो दो-तीन इंच चौड़ी थी। थोड़ी उड़द की फलियाँ भी उसमें से निकल रही थीं। इसे देखकर सबका जोश और बढ़ गया था। लेकिन मुख्य इनाम जिसका सबको इन्तज़ार था, वह अभी तक नहीं दिखा था - चूहा!

खोदने वाले तो दो-चार बच्चे ही थे लेकिन बाकी सब भी वहीं मण्डरा रहे थे और इसके बारे में बातें कर रहे थे। कुछ अपने अनुभव के आधार पर अनुमान लगा रहे थे कि कहाँ तक गए होंगे ये दर। बहुत-से बच्चों के पास, उनके घर पर चूहों को मारने की कहानियाँ थीं, जो एक-दूसरे को बता रहे थे, अपने दर की खुदाई पर नज़र रखते हुए। देखते ही देखते दरों की नालियाँ लम्बी होती गईं और उसमें से उड़द निकलती रही। हम लोग तो घर वापिस आ गए क्योंकि इसका कोई अन्त नहीं दिख रहा था।

अचानक कुछ देर बाद शोर मचा और एक-दो बच्चे चिल्लाते हुए घर आए। पता चला कि गरी से जो दर निकला था वो वहाँ से 25-30 फीट की दूरी पर एक कमरेनुमा गड्ढे में परिवर्तित हो गया था जिसमें बहुत-सी उड़द की फलियाँ थीं। और मज़ेदार बात यह थी कि वहाँ से दो दिशाओं में और नालियाँ जा रही थीं। एक मेस की तरफ और दूसरी हमारे घर की तरफ। यह देखकर सबको बहुत मज़ा आया। जहाँ-जहाँ खाने का कुछ मिलता है, वहाँ से चूहों ने, बाहर के रास्ते निकाले हुए थे। चूहों के इस भण्डारगृह से मेस की दूरी करीब 50 फीट होगी। हमारा घर भी वहाँ से 30-40 फीट होगा। इन नालियों के जाल को देखकर स्पष्ट था कि यह एक चूहे का काम नहीं था। बहुत सारे चूहों ने मिलकर इस काम को अंजाम दिया होगा।

'ऑपरेशन उड़दी' सफल रहा

चूहों के भण्डारगृह से करीब एक टोकरी उड़द की फली निकली और सात-आठ हट्टे-कट्टे चूहे मारे गए। इस प्रक्रिया से दो काम सामने आए - पहला, आज दिनभर जो हुआ,

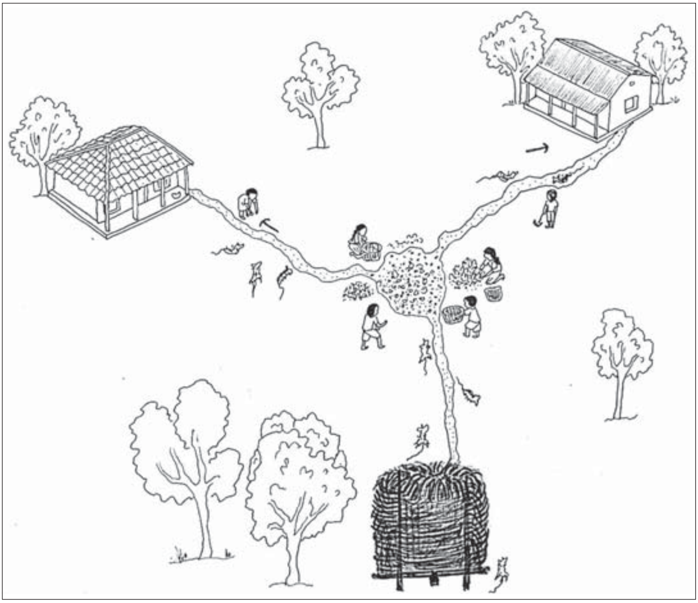

चित्र-2: बच्चों ने चूहों का सारा प्लान ध्वस्त कर दिया और टोकरी भर के उड़द की फली बरामद कर ली!🙂

उसके बारे में लिखना और दूसरा यह कि चूहों द्वारा बनाए गए रास्तों का नक्शा बनाना। लिखना किसी को नहीं आता था। कुछ बड़े बच्चों ने शायद थोड़ा लिखने की कोशिश की। नक्शा बनाना भी किसी को समझ नहीं आ रहा था लेकिन फिर भी सबने बनाने की कोशिश की। किसी तरह कुछ बच्चों ने बनाया भी। लेकिन चूहों के रास्तों का नक्शा, हम सबके दिमागों में छप गया था। नक्शे से सम्बन्धित यह बहुत अच्छी गतिविधि थी। नक्शा बनाने से पहले, उसे देख पाना बहुत अच्छा था।

इस बारे में कई बातें हुईं। सभी ने पहली बार यह देखा और जाना था कि चूहे इतने सलीके से अपना काम करते हैं। पूरे सालभर के लिए वे खाने का सामान इकट्ठा करके रखते होंगे, इस बात का तो किसी को भी अन्दाज़ा ही नहीं था। हमारे लिए भी यह सब उतना ही नया था जितना बच्चों के लिए। चूहे केवल अकेले-अकेले इधर-उधर भागने वाले और बिल्लियों से डरने वाले जानवर नहीं हैं, इनकी भी कुछ व्यवस्था है जिसे ये जान-बूझकर बनाते हैं। भविष्य के लिए सोचकर कुछ काम करना, यह तो बहुत बुद्धिमानी की बात हो गई। इतना तो बहुत-से इन्सान भी नहीं सोच पाते। हमें जानवरों को देखने का एक अलग नज़रिया मिल गया था

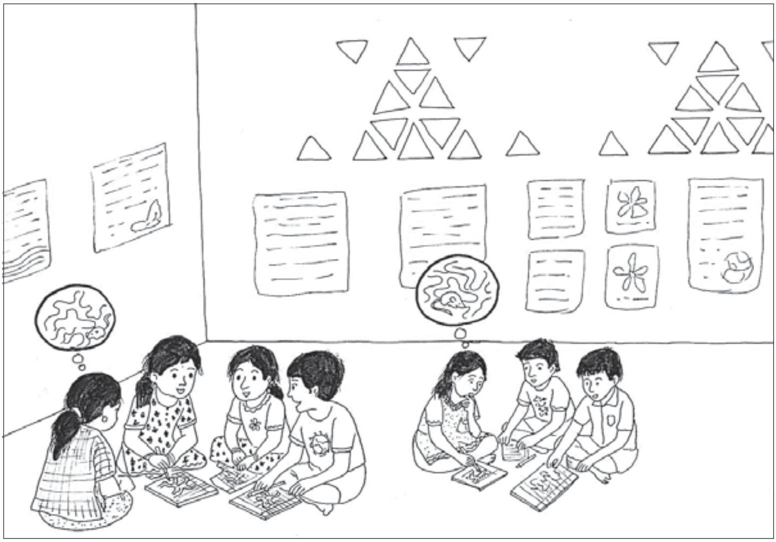

चित्र-3: पहली बार बच्चे नक्शा बनाने की कोशिश कर रहे थे। नक्शे की समझ बनाने के लिए दिमाग को तैयार करने के लिए ऐसी गतिविधियाँ ज़रूरी हैं।

- वे बुद्धिमान होते हैं, वे योजना बनाते हैं और वे समूह में काम करते हैं।

अनुभव से उपजी शिक्षा

इस नई खोज से सब बहुत उत्साहित थे। हमें तो लगा कि हमारा वैकल्पिक स्कूल बस सफल ही हो गया। बच्चों को यह एहसास भी नहीं था कि उन्होंने आज कुछ 'सीखा' है!! हमने तो आज तक ऐसा किसी स्कूल में होते हुए नहीं सुना था। बच्चों के लिए मज़ा था। जैसे पहले बताया था, ऐसा नहीं था कि सारे-के-सारे बच्चे इस गतिविधि में शरीक हों। कुछ देर के बाद सिर्फ कुछ ही बच्चे ऐसे कामों में बचे रहते थे। अन्य बच्चे इधर-उधर हो लेते थे। यह चुनौती हर समय बनी रहती थी कि सब बच्चे किसी गतिविधि में शामिल हों। शुरुआती दौर में तो ऐसे क्रियाकलापों में शिक्षकों को शामिल रखना भी एक चुनौती थी क्योंकि ऐसे कामों का पढ़ाई-लिखाई से कुछ लेना-देना है, इस बारे में हम लोग खुद भी समझने की ही कोशिश कर रहे थे। शिक्षकों को तो यह सब मज़ाक ही लगता था।

हमें आज के दिन में जो सबसे महत्वपूर्ण लगा, वह था कि बच्चों ने यह तय किया कि क्या करना है। अपनी रुचि से कुछ करने का सोचना और उसे अन्त तक करते रहना, यह बहुत ज़रूरी अनुभव था। जो सोचा था, वह बहुत ज़रूरी काम था – यह

बात महत्वपूर्ण है। आज दिनभर जो हुआ, वह कोई कृत्रिम, पूर्व-निर्धारित गतिविधि नहीं थी। वो ज़िन्दगी का असली काम था जो सब ने किया। असल में तो वह हमें या शिक्षकों को दिखना चाहिए था। बच्चे अपने परिवेश को बहुत बारीकी-से देखते रहते हैं। तो किसी व्यवस्था में बच्चों को भागीदार बनाने का यह भी एक फायदा है कि आपको बहुत-सी आँखें, कान और हाथ मिल जाते हैं। क्या चल रहा है, वो बारीकी-से पता चल जाएगा। बड़े लोग जानने के बाद भी सोचते रहते हैं कि बताएँ या नहीं, बताने से क्या होगा आदि आदि।

आज की दूसरी बात जो अच्छी लगी, कि ऐसी चीज़ें स्कूल के परिवेश में हो पाईं। ज़रूरी नहीं है कि बच्चे ऐसी बातें क्लास में करें या बड़ों को बताएँ। जब उनसे पूछा गया कि 'आज क्या करना है' तो उन्हें ऐसा नहीं लगा कि केवल पढ़ाई-लिखाई सम्बन्धित बात ही करनी है। इस अवलोकन को उन्होंने ही साझा किया। मतलब, यह एक अच्छा रिश्ता बन रहा था बच्चों से। पारम्परिक रूप से स्कूल से जुड़ी बातों से परे, जीवन से जुड़ी बातें वहाँ हो पाईं, यह बहुत अहम बात थी। यही तो हमें सही लगता था – शिक्षा का जीवन से जुड़ाव। हालाँकि, इस 'उड़दी दिवस' का औपचारिक शिक्षा से क्या सम्बन्ध बनेगा, यह तो स्पष्ट नहीं था, लेकिन यह कुछ मज़ेदार था, अच्छा था और काम का था – इतना साफ था। ऐसे और भी काम करते रहना है, यह भी मन में पक्का हो गया था। न भी हो तो क्या। हम शास्त्र के बारे में बहुत ज़्यादा नहीं सोचते थे। बल्कि ज़्यादा शास्त्र सोचने वाले हमारी नज़रों में, उस समय हँसी का पात्र ही होते थे।

* * * * *

इस तरह की एक और घटना है। स्कूल में ट्यूबवेल खोदने का तय हुआ। हमारा हैण्डपम्प बहुत भारी था। पानी निकालने के लिए दो-दो बच्चे कूद-कूद कर उसे हिला पाते थे। गर्मी की छुट्टियाँ आते-आते पानी नीचे चला जाता था। न चाहते हुए भी ट्यूबवेल खोदने का तय हुआ। ट्यूबवेल खोदने के पहले एक पानी आँकने वाले को बुलाया गया। यह पूरे स्कूल में चर्चा और बातचीत का विषय बन गया। हमारे पास भी, तीन दशकों से आदिवासियों के बीच रहते हुए, इस विषय पर जितनी जानकारी

चित्र-4: हैण्डपम्प बहुत भारी था। दो-दो बच्चे लटककर पानी निकालते थे। इसी से शुरुआती दौर के पेड़ों को पानी देते थे। बच्चों की कड़ी मेहनत से ही आधारशिला में हरियाली हो पाई।

संचित हुई थी, उसे याद किया। बच्चों ने भी जो कुछ सुना था, उसे बताया। कई बच्चों ने पहले भी पानी आँकने वाले को देखा था जब उनके घर या फलिया में किसी ने कुआँ खुदवाया था। कई सारे स्थानीय लोगों से राय-मशवरे के बाद, निवाली (बड़वानी ज़िले की तहसील) में रहने वाले एक व्यक्ति को तय किया गया।

सारा स्कूल उसका बेताबी से इन्तज़ार कर रहा था। वह आया और तुरन्त ही अपने काम में जुट गया। वह नंगे पैर हमारे पूरे कैम्पस में घूमा। चारों तरफ का मुआयना किया। हमसे पानी वाले ने एक नारियल मंगवाया, और उसे हाथ में लेकर घूमा। नारियल के बाल उतार दिए, केवल बालों की चोटी छोड़ दी। फिर हथेली पर नारियल के गोल हिस्से को कुछ इस तरह से रखा जिससे चोटी थोड़ी ऊपर को उठी थी। इस तरह हथेली पर हाथ रखकर वो पूरे कैम्पस में घूमा। बच्चे भी उसके पीछे भीड़ लगाकर चलने लगे लेकिन उसने बच्चों को दूर भगा दिया।

उस व्यक्ति ने पानी का एक पॉइन्ट सबसे ऊँचे हिस्से पर ढूँढा और दूसरा, सबसे दक्षिणी छोर पर। हमने ऊँचे स्थान को ट्यूबवेल खोदने के लिए चुना क्योंकि वही हमारे और

बच्चों के रहने के करीब का स्थान था। सब हैरान थे कि पहाड़ी पर होते हुए भी यहाँ पानी मिल गया। पानी ढूँढने वाले से हमने पूछा कि पानी कैसे ढूँढा तो उसने बताया कि जिस स्थान पर पानी होता है, वहाँ नारियल अपने आप खड़ा हो जाता है। हमें इस बात पर विश्वास नहीं हुआ लेकिन बच्चे और स्थानीय अध्यापक इस बात को ऐसे दोहराते जैसे यह अकाट्य सत्य हो। इसलिए हमने इसकी जाँच करना ज़रूरी समझा। बाद में, बच्चे और हम भी नारियल लेकर घूमे। ज़्यादातर का नारियल ऊपर नहीं उठा लेकिन यह ज़रूर पता चला कि हथेली को बहुत हलके से तिरछा करने पर नारियल ऊपर उठ जाता है। शायद वह आदमी आसपास की भौगोलिक स्थिति देखकर भी कुछ अन्दाज़ा लगाता हो, क्या पता।

खैर, ट्यूबवेल खोदने के पहले पानी ढूँढने वाले को बुलाने से यह हुआ कि इस विषय पर बातें होने लगीं। बच्चों ने इस बारे में जो सुना था, वो बताया। हमें अट्ठा गाँव (मध्य प्रदेश के अलीराजपुर ज़िले का एक गाँव) में आदिवासियों के बीच बिताए सालों से जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, उसे याद किया। लेकिन कुल मिलाकर कुछ खास नहीं था। जो पानी ढूँढने आया था, हमने उसकी बातचीत बच्चों के साथ करवाने की कोशिश की लेकिन वह कुछ भी बताने में आनाकानी कर रहा था। हमने बच्चों से कहा कि जाओ और अपने गाँव में बुज़ुर्गों से पूछकर आओ कि इस बारे में उन्हें कुछ पता है क्या। बच्चों को ऐसे काम बहुत अच्छे लगते थे क्योंकि इस बहाने उन्हें घूमने को मिल जाता था।

चित्र-5: *पारम्परिक ज्ञान के उदाहरण बच्चों के सामने लाना और उसके बारे में बात करना, एक महत्वपूर्ण काम था।*

इस बीच, बच्चों से मिलने आने वाले उनके माता-पिता से भी हम लोग इस बारे में पूछते थे। इस सब पूछाताछी से हमें कुछ बातें पता चलीं। एक तो यह कि जहाँ बड़े पेड़ होंगे, वहाँ पानी होगा। सुनने के बाद लगा कि हाँ, यह तो काफी सामान्य बात है। पेड़ गर्मी में भी ज़िन्दा रहते हैं तो जड़ें कहीं से तो पानी लाती होंगी। किसी ने कहा कि गूलर के पेड़ के नीचे पानी ज़रूर होता है। हमें भी याद आया कि हमने अलीराजपुर में कई जगह पानी की झिर के पास गूलर के पेड़ देखे थे। एक बच्चे के दादा ने हमारे ही घर के पास एक बेल दिखाई जिसे स्थानीय भाषा में वसुनिया कहते हैं। उनका कहना था

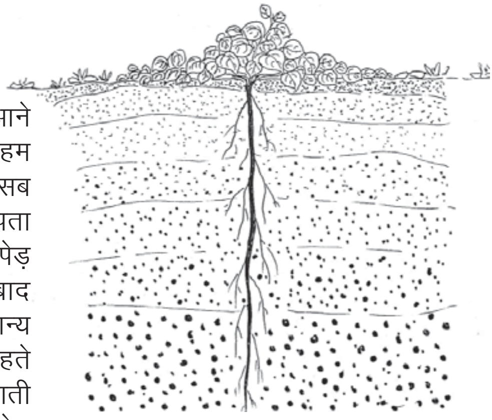

चित्र-7: वसुनिया की बेल की जड़ें बहुत गहरे से पानी और पोषक तत्व ऊपर लाती हैं।

कि इसकी जड़ बहुत नीचे जाती है। बाद में हमें पता चला कि इस तरह के पौधों को पम्प प्लांट्स भी कहते हैं। मतलब जो पम्प की तरह बहुत नीचे से पानी व पोषक तत्वों को ऊपर लाते हैं। एक बुज़ुर्ग ने बताया कि जहाँ दीमक का, पहाड़ जैसा घर होता है, उसके पश्चिम में तीन-चार हाथ पर कुआँ खोदने से पानी निकलता है। यह तो हमें बड़ा सटीक लगा। हमने सोचा कि क्यों न इस बात को जाँचा जाए।

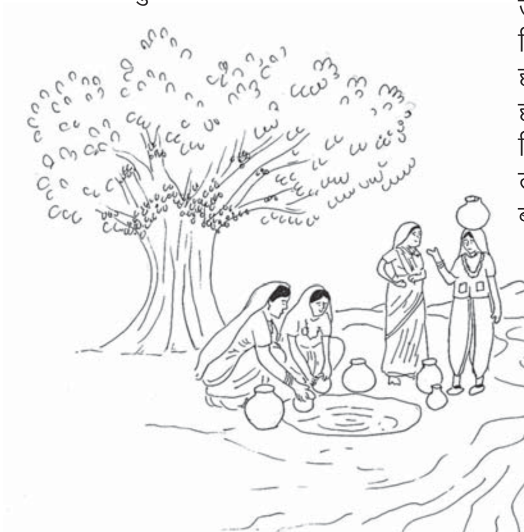

चित्र-6: गूलर के पेड़ के नीचे अक्सर पानी के झरने होते हैं।

सब बच्चों को बड़े हॉल में इकट्ठा किया गया। ज़मीन के अन्दर के पानी के बारे में लोग पेड़-पौधों व अन्य तरीकों द्वारा कैसे पता करते हैं, इस बारे में चर्चा शुरू हुई। जो बातें हमें लोगों ने बताई थीं, उनके बारे में बातें हुईं। बच्चे और शिक्षक बताए गए उदाहरणों के बारे में सोचने लगे। जब उन्हें बताया कि गूलर के पेड़ के नीचे पानी होता है तो एक-दो

बच्चों को याद आया कि उनके गाँव में भी एक झिर के पास गूलर का पेड़ है। इस तरह बुज़ुर्गों द्वारा बताए गए उदाहरणों की बच्चे भी पुष्टी कर रहे थे। एक बच्चे के दादा ने बताया था कि जहाँ ज़मीन के नीचे पानी होता है वहाँ ज़मीन थोड़ी गर्म होती है। अगले ही दिन सवेरे जब बच्चे कच्ची सड़क पर दौड़ने गए तो वापस आकर बताया कि किसी स्थान पर उन्हें भी हलकी-सी गर्मी महसूस हुई थी। हमने भी खेत में नंगे पैर चलते हुए इस बात को महसूस किया है। लेकिन ऐसा ज़मीन के पानी के कारण है, यह कहा नहीं जा सकता।

दीमक के घर और पानी की तलाश

फिर बात निकली दीमक के घर यानी दीमक की बाम्बी की। यह किसी ने नहीं सोचा था। फिर सोचकर लगा कि हाँ, ज़रूर इसके नीचे पानी होता होगा, क्योंकि दीमक के घरों में हर समय नई मिट्टी नमी लिए होती है। दीमक नीचे से गीली मिट्टी लाती है और अपने घर को ऊँचा करती रहती है।

दीमक के घर और ज़मीन के नीचे पानी के बीच आपसी सम्बन्ध की बात सही है या नहीं, कैसे जाँचें? किसी ने कहा कि "जहाँ कुएँ हैं, वहाँ जाकर देखते हैं।" "ठीक है, यह किया जा सकता है।" हमने भी खोजने का यह तरीका सोचा हुआ था लेकिन बच्चे भी खोजने के तरीके के बारे में सोच पाएँ, यह ज़रूरी था। फिर बात निकली कि यह ज़रूरी नहीं है कि कुएँ में नीचे पानी हो। उसमें तो बगल से भी झिर फूटती हैं। कुछ लोग बोलते हैं - पानी का धूरा। "क्या तुम्हें मालूम है कि धूरा क्या होता है?" कुछ बड़े बच्चों ने यह शब्द सुन रखा था और उन्हें उसका मतलब भी पता था।

गाँव में लोगों को यह बात मालूम है कि ज़मीन के नीचे पानी के चैनल होते हैं जिन्हें धूरा कहते हैं। कुएँ की दीवारों पर देखा जा सकता है कि अलग-अलग गहराई पर कई दिशाओं से पानी के झरने कुएँ में पानी गिराते हैं। अच्छा कुआँ वहाँ होता है जहाँ

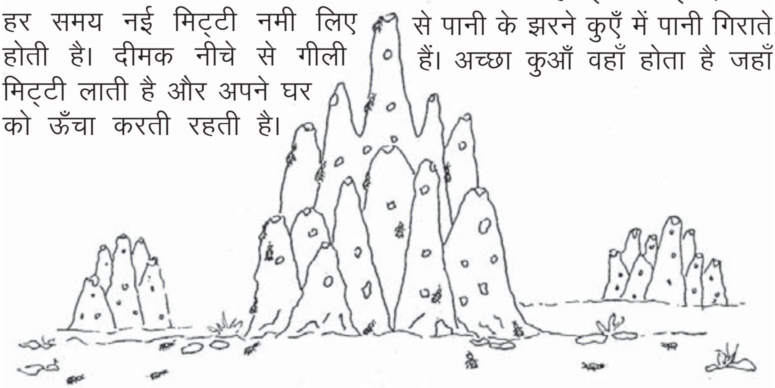

चित्र-8: दीमक का घर जिसके पश्चिम में खोदने से पानी मिल जाता है, ऐसा बताया गया।

उसमें दो-तीन धूरे हों। यह तय हुआ कि तीन-चार समूह में बच्चे बँट जाएँ और दीमक के अलग-अलग घरों को देखें कि वे एक लाइन में आते हैं कि नहीं और क्या यह लाइन किसी कुएँ या पानी के अन्य किसी स्त्रोत में जाती है। साथ ही, अपनी कॉपी में इनको इंगित करके देखें कि ये एक लाइन में हैं कि नहीं।

हमारे स्कूल की पहाड़ी के पूर्वी हिस्से में ही दीमक का एक बड़ा घर था। एक तो वहीं था जहाँ ट्यूबवेल खुदा हुआ था। एक कुआँ पश्चिम की ओर नीचे तरफ था। ये दो तो याद हैं। दूसरे दो समूह कहाँ गए थे, याद नहीं। कुछ समूहों के साथ शिक्षक भी गए थे क्योंकि हमें ऐसा लगा कि यह काम थोड़ा पेचीदा है। वैसे शिक्षकों ने भी कभी ऐसा कुछ किया नहीं था लेकिन कभी-कभी किसी अड़चन को सुलझाने में किसी बड़े व्यक्ति का अनुभव काम आ जाता है।

इस काम के लिए जाने से पहले एक गतिविधि करवाई गई। मैदान में कुछ दूरी पर दो बच्चों को आमने-सामने खड़ा कर दिया गया जिन्होंने अपने दोनों हाथों में एक-एक डण्डा पकड़ा हुआ था। एक बच्चे ने एक लकड़ी के पास खड़े होकर, एक आँख बन्द करके दूसरी लकड़ी को देखा। फिर एक बच्चे को कहा कि वह दोनों लकड़ियों के बीच में जाकर खड़ा हो जाए। अब किनारे खड़े बच्चे ने बताया कि बीच वाला बच्चा लाइन

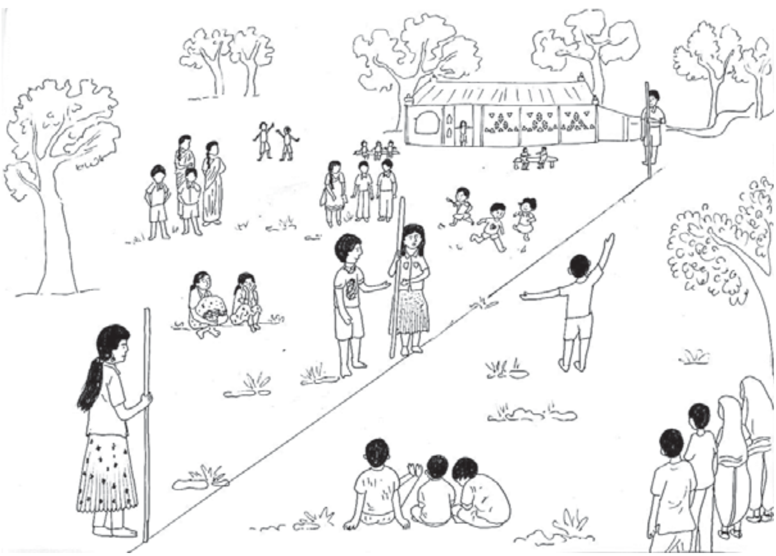

चित्र-9: *तीन डण्डों से सीधी रेखा बनाने का अभ्यास।*

पर है या लाइन से इधर-उधर। उसे दाएँ-बाएँ सरकाकर दोनों लकड़ियों से बनी लाइन के बीच में लाया गया। इससे दो लकड़ियाँ और बीच वाला बच्चा एक लाइन में आ गए। इस गतिविधि को करने से उन्हें यह पता करने में सहायता मिलेगी कि दूरी पर स्थित चीज़ें एक लाइन में हैं या नहीं। इस गतिविधि को बोर्ड पर रेखांकित करके भी दिखाया गया कि तीन चीज़ों को एक लाइन में लाकर, आगे कैसे बढ़ना है।

हमें जो समझाना था, वो समझा दिया। बच्चे तो जाने के लिए उतावले थे। जब वे उतावले हो जाते हैं तो ज़्यादा ध्यान नहीं देते कि क्या बताया जा रहा है। उम्मीद ही की जा सकती है कि कुछ ने तो समझा होगा।

सब चले गए। थोड़ी देर के लिए शान्ति हो गई जिसके लिए हम लोग बहुत बार तरस भी जाते थे। दो-तीन घण्टे बाद बच्चे वापिस आ गए।

सब हॉल में इकट्ठे हुए और बातचीत शुरू हुई। कुछ समूहों के बच्चे काफी उत्साहित थे और कुछ के चुपचाप पीछे बैठ गए थे। स्पष्ट था कि उन्हें इस कार्य में जो मिलने की उम्मीद थी, वो नहीं मिला।

सभी ने अपनी-अपनी रिपोर्ट पेश की। क्या हुआ, कहाँ गए, कौन मिला, उन्होंने क्या कहा आदि आदि। कुछ बच्चों ने कॉपी में चित्र बनाने की कोशिश भी की। सभी को राफ (दीमक का टीला) मिले थे जिनका स्थान, किसी पास की जगह का उल्लेख करते हुए उन्होंने अपनी कॉपी में इंगित किया था, जैसे रामलाल के घर के पास, हैण्डपम्प के पास आदि। बड़े पेड़ और बाँस के झुरमुट को भी दर्शाया गया था। चित्र में हैण्डपम्प और कुएँ थे। बच्चों की कॉपियों में बने चित्र सब देख सकें इसलिए उन्हें बोर्ड पर बनाया गया। एक-दो रेखाचित्रों से स्पष्ट था कि कम-से-कम दो समूह के बच्चों को लाइनें मिल गई थीं। एक समूह ने तो आधारशिला कैम्पस में ही पुराने हैण्डपम्प, दीमक के राफ और नए ट्यूबवेल की जगह की लाइन बना दी थी। दूसरे समूह की लाइन पूर्व वाले राफ से शुरू होती हुई, उत्तर में स्थित खरतिया इलाके की रोड पर बने हैण्डपम्प तक गई। राफ के पश्चिम में भी एक राफ था जो लाइन से थोड़ा बाहर था। हैण्डपम्प के पास एक बाँस का पुराना झुरमुट भी था। श्रीराम के कुएँ पर जाकर सबने देखा कि कुएँ में झिर किस दिशा से निकल रही है। उन झिरों की लाइनों में क्या मिला, यह याद नहीं है।

यह सोचना कि ज़मीन के नीचे पानी के धूरे होंगे जिनमें पानी बह रहा होगा या हम जहाँ बैठे हैं शायद उसके नीचे भी पानी बह रहा होगा, यह सब बहुत रोमांचक और अविश्वसनीय लग रहा था। अधिकतर बच्चों और शिक्षकों की कल्पना भी कुछ नदी की तरह की थी जो ज़मीन

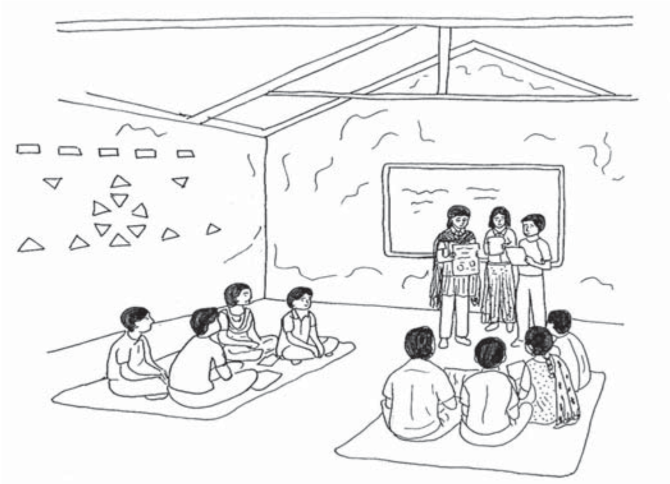

चित्र-10: सभी समूहों के बच्चे जो खोजकर लाए, उसे एक-दूसरे को बताना भी पढ़ाई का अहम हिस्सा था।

के अन्दर बह रही है, लेकिन यह कल्पना सम्भव नहीं लग रही थी।

बाद में, सवेरे दौड़ने के समय रास्ते में एक चढ़ाव देखा जहाँ एक तरफ की पहाड़ी काटी गई थी। यहाँ खेत की मिट्टी के नीचे की सतहें स्पष्ट दिखाई देती हैं। उनमें से एक सतह कंकड़ों से भरी थी। बारिश के मौसम में तो साफ तौर पर उसमें से पानी का रिसाव दिखाई देता है। गाँव की नदी पर जब घूमने गए तो वहाँ भी पहाड़ के बीच से पानी रिसता हुआ दिखा था। कहीं-कहीं इन कच्चे कंकड़ों की परत के नीचे कठोर चट्टान भी दिखाई देती है जिस पर यह पानी ढाल की तरफ बह सकता है। इन भ्रमणों के बाद बच्चों ने अपने गाँवों में भी पहाड़ों के किनारों से पानी के झरने देखने की बातें बताईं। रोजानी माल गाँव पहाड़ पर है। वहाँ ऊपर पानी के झरने कैसे हैं? क्या कोई धूरा ज़मीन के ऊपर आ गया होगा?

इन सबसे बच्चों के दिमाग में धूरे की कल्पना कुछ हद तक स्पष्ट हुई। धरती में पानी है, हम सब बड़ी आसानी-से कह देते हैं लेकिन जब उसके बारे में सोचते हैं, यदि कभी सोचते भी हैं, तो वो नदी या तालाब के रूप में सोचते हैं। इस चर्चा से धरती के ठोस गोले के अन्दर का भी कुछ चित्र उभरता है।

किताबों से परे, ज़मीन से जुड़ा भूगोल

भूगोल की किताबों में स्थानीय भूगोल के बारे में न के बराबर जानकारी होती है। बच्चे पर्वतमालाओं के नाम रटते रहते हैं लेकिन उनका

मिट्टी के नमूने

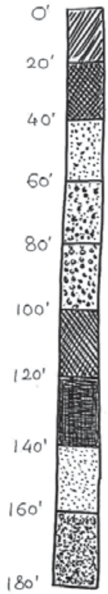

चित्र-11: जब ट्यूबवेल खुद रहा था तो पूरे समय बच्चे वहाँ बैठे रहे। हर 20 फिट की खुदाई पर जो मिट्टी निकल रही थी, उसे प्लास्टिक की थैलियों में भरकर रखा और एक के नीचे एक को स्टेपल करके लटका दिया। बहुत सालों तक यह स्कूल में लटका था। बच्चों और आने-जाने वालों को बच्चे समझाते थे कि ज़मीन के नीचे तरह-तरह की मिट्टी और पत्थर होते हैं।

गाँव किस पर्वतमाला या भौगोलिक क्षेत्र में आता है, उन्हें कोई नहीं बताता। तीन तरह का मिट्टी का वर्गीकरण बताते हैं लेकिन जब बच्चों से कहा कि अपने खेत से अलग-अलग तरह की मिट्टी ढूँढकर लाओ तो वे आठ तरह की मिट्टी ले आए। स्कूल में आए भूगोल के विशेषज्ञ भी सिर खुजाने लगे।

अधिकतर बातें जो हमारे स्कूली पाठ्यक्रम में पढ़ाई जाती हैं, वे बच्चों के लिए अमूर्त होती हैं। नहीं भी होतीं तो लगता है कि वे अमूर्त हैं। इन बातों का, बच्चों के दिमाग में एक चित्र पैदा करना और उनके बारे में नए सिरे से सोचने की प्रक्रिया शुरू करना, हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण था। इसके लिए अपने परिवेश में पाई जाने वाली किसी भी चीज़ या होने वाली घटना से बच्चों को गहराई से जोड़ने के अवसर ढूँढते रहना, हमारा एक पेडागॉजिकल तरीका बन गया।

आदिवासी बच्चों के लिए, शायद सभी के लिए, स्कूल की किताबों के हिन्दी-अँग्रेज़ी शब्द और उनमें दिए गए उदाहरण बिलकुल अपरिचित होते हैं। इस बात का एहसास हमें बार-बार होता रहा। ताजमहल जगह है या इन्सान है, वे यही सोचते रहे। यह तो उनकी सोच से बाहर था कि ताजमहल किसी इमारत का नाम है! इसी तरह, द्विबीजपत्री बीजों का उदाहरण सेम होता है, वे यह रटते रहे, बिना यह जाने कि सेम वही वालोर है जो उनके आँगन में लगी है और जिसकी सब्ज़ी वे बचपन से खाते आए हैं।

* * *

इन कामों से यह समझ आया कि सीखना हर समय होता है। हमारा काम था, इन मौकों को पहचानना और उनमें बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करवाना। वैसे कुछ लोग हैं जो बच्चों द्वारा किए जा रहे किसी भी काम या खेल में वयस्कों द्वारा किसी भी तरह के जानबूझकर किए गए प्रयास और हस्तक्षेप को सही नहीं मानते। लेकिन हमें यह पूरी तरह

वाजिब नहीं लगता। यह सही है कि बहुत ज़्यादा रोक-टोक और निर्देश नहीं देना चाहिए लेकिन हमें लगता है कि सीखने के जीवन्त मौके पहचानना शिक्षक के लिए एक सचेत और महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। इस दौरान हम यह सोच सकते हैं कि जो चल रहा है, उसमें से कौन-से नए अनुभव बच्चों को दिए जा सकते हैं। जैसे बारिश, सर्दी एवं गर्मी के मौसम हम और बच्चे हर समय अनुभव करते हैं लेकिन इन्हें सीखने के एक मौके में परिवर्तित करने के लिए ज़रूरी है कि हम इन अनुभवों के साथ जुड़ें। यह जुड़ाव अनुभवों के अवलोकन करने से, अवलोकनों को लिखने से, बताने से, इन विषयों के बारे में पढ़ने से और इन अनुभवों के बारे में प्रश्नों पर चर्चा के माध्यम से हो सकता है – जैसे ये मौसम हर साल एक खास क्रम में क्यों आते हैं? ऐसे बहुत-से मौकों का बच्चों ने अन्वेषण किया, जैसे ट्यूबवेल की खुदाई के दौरान हर पाइप के बाद निकलने वाली मिट्टी इकट्ठा करके रखना। इससे धरती के अन्दर 500 फीट तक क्या है, यह बहुत सालों तक बच्चों को दिखता रहा। साँप पकड़ा तो उसकी चीरफाड़ करना, उसे व अन्य कीड़ों को फॉर्मलीन में रखना। हर मौसम में बहुत-से अवलोकन व प्रयोग करना, खेती में नाप-तौल व हिसाब करना आदि।

इस तरह के कामों से एक महत्वपूर्ण मूल्य जो स्थापित होता है, कि ज्ञान केवल किताबों में नहीं होता। वह बुज़ुर्गों के पास, आम लोगों के पास भी होता है। और बहुत-सी बातें जो ‘अनपढ़’ गाँववालों को मालूम हैं, वो हमारी किताबों में भी नहीं लिखी हैं। बाद तक यह बात हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण बनी रही कि आदिवासी बच्चों के मन में यह स्थापित कर सकें कि गरीब और पिछड़े कहे जाने वाले आदिवासियों के पास भी महत्वपूर्ण ज्ञान होता है।

चलो, इस बार चूहों और दीमक से मूल्य शिक्षा तक की बात यहीं खत्म करते हैं।

अमित और जयश्री: लगभग तीन दशकों से पश्चिम मध्य प्रदेश में भील, भीलाला, बारेला आदिवासियों के बीच में रह रहे हैं। साथ ही, खेडूत मज़दूर चेतना संगठ, नर्मदा बचाओ आन्दोलन व पश्चिम भारत प्रवासी मज़दूर संघ के साथ-साथ आदिवासियों के अन्य संघर्षों के साथ भी खड़े हैं। 1998 से आदिवासी बच्चों व युवाओं की शिक्षा के लिए काम कर रहे हैं।

सभी चित्र: भाग्यश्री: प्रकृति प्रेमी, शिक्षा कर्मी, स्वतंत्र चित्रकार और फोटोग्राफर हैं। रियाज़ अकैडमी ऑफ इलस्ट्रेटर्स, भोपाल से इलस्ट्रेशन का कोर्स किया है। *एकलव्य* संस्था में कुछ वर्षों तक काम करने के बाद, वे इन दिनों अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, खरगोन, मप्र में रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्यरत हैं। उनकी कला और काम, बच्चों की कल्पनाओं से प्रेरित हैं और ज़मीन से जुड़ी कहानियाँ कहने की कोशिश करते हैं।

आनन्द निकेतन बैंक
रोज़ के गणित का विस्तार

अनिल सिंह

बच्चे अक्सर उन चीज़ों को लेकर उत्सुक और उत्साही होते हैं जो बड़ों के लिए तो उपलब्ध हैं लेकिन उन्हें अभी उसके लिए इन्तज़ार करने को कहा जाता है। यह सब उनके आसपास व्याप्त है, वे सबकुछ देख और समझ रहे होते हैं लेकिन उन्हें इसका अभ्यास करने का, इसे किसी तरह जी लेने का मौका दिया ही नहीं जाता।

अर्थपूर्ण गणित शिक्षण

गणित शिक्षण के लिए हमारे पास मोंटेसरी किट के अलावा *एकलव्य* की प्लेस वैल्यू किट, डाइस, नम्बर कार्ड, रंगोमेट्री और गिनमाला थे। बच्चे इनके साथ जुड़ाव भी महसूस कर रहे थे और सीख भी रहे थे लेकिन हम फिर भी कुछ ऐसी चीज़ों की तलाश में थे जो बच्चों को ज़्यादा अर्थपूर्ण, व्यावहारिक और वास्तविक लगें। क्योंकि ये सारी चीज़ें अपने स्वभाव में खेल और ठोस होने के बावजूद गणित सिखाने का एक औपचारिक माहौल ही बनाती थीं। हम इसे तोड़ना चाहते थे।

अगले चरण में हम बाज़ार से प्रिंटिड नोट लेकर आए। इनमें एक रुपए से लेकर 500 तक के नोट थे जो बाहर भी चलन में थे। बच्चे किसी-न-किसी बहाने इनसे 'दो-चार' होते ही थे। पर कुछ ही दिनों में बच्चों की रुचि इनमें खत्म हो गई। इनका आकर्षण भी गणित सिखाने की भेंट चढ़ गया। फिर हमने सोचा, क्यों न आनन्द निकेतन के खुद के नोट छापे जाएँ। हमने वैसा ही किया। हमने अलग-अलग रंग की पेपर शीट में साइज़ का फरक रखते हुए और उन्हें डिज़ाइन करके नोट छापे। उस पर लिखा गया - आनन्द निकेतन बैंक से जारी।

आगे से यही नोट बच्चों की गणित कक्षा में सीखने-सिखाने के लिए धड़ल्ले से इस्तेमाल होने लगे। बच्चे इनसे ज़्यादा लगाव और जीवन्त जुड़ाव अनुभव कर पा रहे थे। हमारे गणित शिक्षक अंकित ने न्यूमरेसी और लॉजिक वाले कमरे में ये सारे नोट एक डिब्बे में रखे हुए थे। वो एक्टिविटी के लिए निकाले जाते और फिर वापस उसमें रख दिए जाते। संख्या बनाना, आपस में लेना-देना, जोड़ना-घटाना और बराबर का

बँटवारा जैसे काम इन नोटों के माध्यम से किए जाते। एक बार छह साल की माही ने इन नोटों को घर ले जाने की मांग रखी। उसकी देखा-देखी और बच्चे भी नोट घर ले जाने की इजाज़त चाह रहे थे। अंकित ने नोट गिनकर उन्हें दे दिए और एक रजिस्टर में उनके नाम की एंट्री कर दी। साथ ही, अगले दिन नोट वापस लेकर आने के लिए भी कहा।

बच्चों के हाथ में खुद का पैसा

उस दिन शाम को फीडबैक मीटिंग में जब अंकित ने यह बात साझा की तो हमें लगा कि कुछ और योजना बनाई जानी चाहिए जिससे कि बच्चों के पास ये नोट उनकी अपनी सम्पत्ति की तरह रह पाएँ और वे इसका वास्तविक जैसा कुछ इस्तेमाल भी कर पाएँ। अंकित ने यह भी बताया कि बच्चे इन नोटों से कुछ खरीदना चाहते थे। प्रमोद ने सुझाव रखा कि बच्चों को अपने काम के लिए जो कागज़, पेंसिल या रबर चाहिए होते हैं, वे इन नोटों से खरीद सकते हैं। ऐसे में उन्हें रुपयों के मान, चीज़ों की कीमत, लेन-देन की वास्तविकता और क्रय-शक्ति का ज़्यादा जीवन्त अनुभव हो सकेगा। हम सभी को यह सुझाव बढ़िया लगा।

बच्चों के साथ मासिक बैठक में इस मुद्दे पर बातचीत की गई। उन्हें यह आइडिया अच्छा लगा। बच्चों के साथ मिलकर कागज़, पेंसिल और रबर की कीमतें तय की गईं।

बच्चों के प्रस्ताव पर शुरुआत के लिए सबकी कीमतें एक रुपए रखी गई। हर बार एक कागज़ या एक पेंसिल का एक रुपया देने की बजाए यह तय हुआ कि एक सप्ताह का हिसाब लिखकर रखा जाए और जिसने जितने कागज़, पेंसिल और रबर स्कूल से खरीदे, उन सबकी कीमत जोड़कर सप्ताह के अन्त में उस बच्चे से उतने रुपए ले लिए जाएँ। अब ऐसे में यह भी ज़रूरी था कि रुपए बच्चों के पास रहें ताकि वे उससे भुगतान कर सकें। अंकित ने सुझाया कि बच्चों को एक मुश्त राशि दे दी जाए जिसे वे अपने पास रखें। वे सप्ताहभर उससे स्टेशनरी की खरीददारी करें और फिर सप्ताह के आखिरी में उसका हिसाब करके, स्कूल को भुगतान कर दें। यह आइडिया सबको जमा और इस व्यवस्था को चालू कर दिया गया।

आनन्द निकेतन बैंक

बच्चों के अपने कबर्ड थे। वे उसमें अपने बैग, टिफिन, कॉपी-किताब और सारे रुपए रखते थे। ज़रूरत पड़ने पर रुपए निकालकर भुगतान करते और बाकी रुपए उसी में रखे रहने देते। धीरे-धीरे कुछ बच्चों के रुपए गुम होने के मामले सामने आए। फिर चोरी होने के मामले भी आए। अब यह एक नई दुनियावी समस्या थी। तो इसका हल भी दुनियावी ढंग से ही निकाला जाना ठीक लगा। एक बड़ी बच्ची अनिसा ने मीटिंग में सुझाव दिया कि बैंक में रुपए सुरक्षित रहते हैं, तो क्या स्कूल का भी एक बैंक हो सकता है जिसमें सब लोग अपने रुपए रखें और ज़रूरत पड़ने पर निकाल सकें। इस बात ने एक नया ही रास्ता खोल दिया था। अब हमें बच्चों को वास्तविक अनुभव देने के लिए एक और चीज़ मिल गई थी।

इस तरह उस मीटिंग में ही ‘आनन्द निकेतन बैंक’ का प्रस्ताव फाइनल हो गया। फिर उसका एक औपचारिक ढाँचा बनाने पर बात हुई। शुरुआत में ऑफिस की टेबल पर प्लास्टिक के कई सारे डिब्बों में अलग-अलग नोट रखकर बैंक की शुरुआत हुई। एक रजिस्टर रखा गया जिसमें सभी बच्चों के लिए अलग-अलग पेज रखे गए। एक पेज में एक-एक बच्चे के लेन-देन का ब्यौरा रखना तय हुआ। बच्चों ने कबर्ड से अपने-अपने नोट लाकर बैंक में जमा कर दिए। अंकित ने बैंक की ज़िम्मेदारी सम्भाली और सप्ताह में एक दिन लंच के बाद बैंक खोलकर, एक घण्टे कामकाज करना तय हुआ।

एक दिन अबीर ने पूछा कि बैंक में उसके कितने रुपए जमा हैं। अंकित ने कहा, “परसों बैंक का दिन है तो उसी दिन रजिस्टर में देखकर बताऊँगा।” अबीर ने कहा कि “मुझे आज बहुत सारा सामान खरीदना है, मुझे अभी रजिस्टर देखकर बताओ कि मेरे कितने रुपए बचे हैं।” अंकित

Anand Niketan Bank

A School bank

Pass Book

Name of Account holder --------------------------------- Group --------------------
Mother's Name -------------------------- Father's Name ----------------------------
Date of Birth ----------------------------- Account No. -------------------------------

ने रजिस्टर में अबीर के नाम का पेज खोला और उसके बचे हुए रुपए की जानकारी दे दी। शाम को फीडबैक मीटिंग में जब अंकित ने यह बात साझा की तो हमें लगा कि बच्चों को मालूम ही होना चाहिए कि उनके पास कितने रुपए हैं। और यहाँ से पासबुक के खयाल ने जन्म लिया। यह एक और वास्तविक और दुनियावी चीज़ होने वाली थी जो बच्चों के आकर्षण का केन्द्र बन सकती थी। और उनके अनुभव में एक नयापन जोड़ सकती थी।

बच्चों की मीटिंग में पासबुक का प्रस्ताव रखा गया। बच्चों को तो मज़ा ही आ गया। उनके हाथ में उनकी अपनी पासबुक होने वाली थी, जैसे बड़ों के पास होती है। वे उसमें देख सकते थे कि बैंक में उनके कितने पैसे जमा हैं। हर सप्ताह अपने लेन-देन को उसमें अपडेट करा सकते थे। कम्प्यूटर पर पासबुक की एक डिज़ाइन बनाई गई। उसके कवर पर 'आनन्द निकेतन बैंक' लिखा था और साथ ही उसका लोगो भी था, जो दरअसल स्कूल का ही लोगो था। ऊपर खाताधारक का नाम, उसके समूह का नाम, और खाता नम्बर लिखा गया था। अन्दर एण्ट्री करने के लिए कॉलम बने थे। हर एण्ट्री के बाद अन्तिम कॉलम में खाताधारक के हस्ताक्षर की जगह थी जो इस बात की पुष्टि के लिए था कि उसके सामने हिसाब-किताब लिखा गया है। सबको पासबुक बाँटी गईं। बच्चों ने उसे अपने-अपने हिसाब से कागज़ के लिफाफे और बैग बनाकर सुरक्षित रखा। इस तरह अस्थायी बैंक और पासबुक के साथ कामकाज चलने लगा।

बैंक मैनेजर की नियुक्ति

एक दिन एक सुझाव आया कि बैंक मैनेजर भी होना चाहिए। अंकित जो अभी तक बैंक की ज़िम्मेदारी देख रहे थे, ने कहा, "यह अच्छा होगा कि बड़े बच्चों के समूह में से एक बैंक मैनेजर चुना जाए और उसे ज़िम्मेदारी सौंपी जाए।" प्रस्ताव रखते ही कई बच्चे इस काम के लिए अपना नाम देने लगे। फिर तय हुआ कि बैंक मैनेजर के लिए एक छोटी-सी परीक्षा रखी जाए और योग्य उम्मीदवार को बैंक मैनेजर नियुक्त किया जाए। यह प्रस्ताव बड़े बच्चों के समूह को जमा। एक दिन तय करके परीक्षा ली गई। 'डीयर' ग्रुप की भूमिका ने टेस्ट क्वालिफाई किया और उसे 'आनन्द निकेतन बैंक' के मैनेजर के पद के लिए नियुक्ति पत्र दिया गया। अगले सप्ताह से उसने कामकाज सम्भाल लिया।

अगली मीटिंग में भूमिका ने सुझाया कि एक बार सभी से रुपए वापस ले लिए जाएँ और फिर से बाँटे जाएँ ताकि सबके पास बराबर-बराबर नोट रहें। इस बीच हमने और नोट प्रिन्ट कर लिए थे। हमारा आकलन था कि सबसे ज़्यादा छोटे नोट मतलब एक, दो, पाँच और दस के होने चाहिए। उसके बाद बीस, पचास और सौ के नोट हों। पाँच सौ और हज़ार के ज़्यादा नोट होने की ज़रूरत नहीं है। इस तरह हम एक राशि पर पहुँचे, और वह थी 3260

रुपए प्रति बच्चा। सभी बच्चों को यह राशि दे दी गई। बच्चों ने कुछ रुपए बैंक में जमा कर दिए और कुछ रुपए हाथ में रखे ताकि वो सप्ताहभर लेन-देन कर सकें।

एक छोटी टेबल पर गत्तों की मदद से बैंक का काउण्टर बनाया गया। फिर बड़े-बड़े अक्षरों में 'आनन्द निकेतन बैंक' लिखकर, उसका प्रिंट निकाला गया और काउण्टर पर चिपका दिया गया। हर शुक्रवार को लंच के बाद भूमिका बैंक काउण्टर के सामने कुर्सी लगाकर बैठ जाती और बच्चे अपनी-अपनी पासबुक लेकर लाइन में लग जाते और बैंक का कामकाज निपटाते। ठीक वैसे ही जैसे बड़े करते हैं। अब कोई बच्चा शुक्रवार को स्कूल से छुट्टी न मारता।

एक बार प्रार्थना की पासबुक खो गई थी। उसने घर में मम्मी-पापा को यह बात बताई। उस महीने की पैरेंट्स मीटिंग में उसकी मम्मी ने हमसे साझा किया कि प्रार्थना बहुत परेशान है क्योंकि उसकी पासबुक गुम गई है। अगले दिन हमने उससे बैंक मैनेजर के नाम एक चिट्ठी लिखवाई और फिर उसे डुप्लिकेट पासबुक बनाकर दी गई।

दो-तीन सप्ताह बाद भूमिका की तरफ से यह माँग आई कि उसे इस काम के लिए कोई सैलरी भी दी जाए। यह भी ठीक रहा। दो हज़ार रुपए प्रति माह के हिसाब से उसकी सैलरी तय की गई। 'बैंक मैनेजर - आनन्द निकेतन बैंक' नाम की एक स्टैम्प भी बनवाई गई। साथ ही, यह भी तय हुआ कि बैंक मैनेजर की ज़िम्मेदारी हर छह महीने में बदली

जाए, ताकि अन्य बच्चों को भी यह मौका मिल सके।

सभी बच्चों के खाते थे। सभी अपनी पासबुक रखते थे। अंकित की मदद से भूमिका ने ब्याज जोड़ने के लिए भी एक फॉर्मूला बनाया जिससे बच्चों को ब्याज जैसी चीज़ के बारे में भी मालुमात हो और उनके रुपए भी थोड़े बढ़ सकें। पर यह ब्याज वाला फॉर्मूला ज़्यादा चला नहीं।

पूंजी से कारोबार की शुरुआत

अब अगला चरण था, इन रुपयों को पूंजी की तरह इस्तेमाल करके, कमाई करने के भी कुछ रास्ते जोड़े जाएँ ताकि रुपयों को बढ़ाने और उनको और ज़्यादा चलन में लाने के रास्ते खुलें। बच्चों को दुनियावी गणित और दुनियावी कार्य-व्यापार के अनुभव के कुछ मौके मिल सकें।

और इस तरह जन्मा साप्ताहिक बाज़ार और दुकानों का आइडिया। दुकान के लिए जगह खरीदने या जगह के मालिक से दुकान किराए पर लेने का आइडिया, अकेले या पाट्र्नरशिप में अपना उपक्रम शुरू करने का आइडिया, स्कूल से कच्चा माल खरीदकर नए उत्पाद बनाकर बेचने का आइडिया, चीज़ों की कीमत तय करने का गणित लगाना, मुनाफा कमाने का आइडिया। अब बैंक के साथ-साथ साप्ताहिक बाज़ार भी शुरू होने वाला था।

अगला किस्सा इन्हीं साप्ताहिक बाज़ारों और इसकी रंग-बिरंगी दुनिया के बारे में होगा।

अनिल सिंह: पिछले 25 वर्षों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। विगत डेढ़ दशक से प्राथमिक शिक्षा उनका प्रमुख कार्य रहा है। भोपाल के आनंद निकेतन डेमोक्रैटिक स्कूल की संकल्पना के दिनों से वे जुड़े रहे और उसका संचालन किया। वर्तमान में, टाटा ट्रस्ट के पराग इनिशिएटिव से जुड़कर बाल साहित्य और पुस्तकालय संवर्धन का काम कर रहे हैं।

सभी फोटो: अनिल सिंह।

इतिहासों के अँधेरे-उजले गलियारे, सुरंगें और तहखाने और उनसे गुज़रते बच्चे!

प्रकाश कान्त

पारम्परिक इतिहास शिक्षण और इतिहास की पुस्तकों से आम तौर पर यह शिकायत हुआ करती है, और वह शिकायत अपनी जगह काफी हद तक सही भी होती है, कि यह इतिहास ज़्यादातर सिर्फ राजाओं-नवाबों के नाम, उनकी वंशावलियों और दीगर कारनामों का लेखा-जोखा होता है। राजा-नवाब, युद्ध, हार-जीत, राज्य, साम्राज्य, साम्राज्य-विस्तार, राज्य व्यवस्था जैसी बातों और ब्यौरों से भरे इतिहास सामान्यतः उबाऊ होते हैं और इस पर तिथियों की भरमार! हर तिथि महत्वपूर्ण! हर तिथि ऐतिहासिक!! यह सब मिलकर बच्चों में एक खास तरह की ऊब और आतंक पैदा करते हैं।

इतिहास लेखन की विडम्बना

इतिहास शुरू से ही राजसत्ता केन्द्रित रहा। जन की सत्ता, जन की भूमिका उससे बेदखल रही। राजा, उसका खानदान, वंश, यश, जय-पराजय और कामकाज। यही इतिहास था। कभी जानने-समझने की कोशिश नहीं की गई कि उस समय के लोग क्या कर रहे थे! राजा की तो हर बात का बखान था लेकिन उस प्रजा का कहीं ज़िक्र नहीं था जिसका वह राजा था। हर समय-काल के राजा के बारे में तो खूब बताया जाता था कि वह कौन था, कैसा था, क्या करता था लेकिन उस समय के लोग कैसे थे, क्या करते थे वगैरह बातों का या तो ज़िक्र होता ही नहीं था या फिर बहुत कामचलाऊ किस्म का होता था। केवल विभिन्न सभ्यताओं का इतिहास ऐसा रहा जिसमें लोगों का ज़िक्र हुआ। यह भी शायद इसलिए क्योंकि राजा वहाँ या तो थे नहीं या बहुत कम थे।

इतिहास लेखन के इस जनविरोधी रवैये से बौद्धिक वर्ग को काफी शिकायत रही। मुझे खुद लगता रहता था कि इतिहास इस तरह से क्यों नहीं लिखा जाना चाहिए कि अलग-अलग समय में लोग किस तरह रहते थे? उनका सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक जीवन कैसा था? उनके सोच और व्यवहार में किस

तरह से परिवर्तन आते थे? मतलब कि इतिहास का फोकस समय-विशेष के लोगों पर क्यों नहीं होना चाहिए, बजाय राजसत्ता के? भले ही यह सत्ता हर दौर के समाज और व्यक्ति को लगभग पूरी दुनिया में नियंत्रित, निर्देशित और नियमित करने वाली रही हो! और ऐसा सोचना राजतंत्र बनाम जनतंत्र के सरलीकरण का मसला नहीं था। बल्कि इतिहास के रूढ़ और जड़ हो चुके पैटर्न से असहमत होने के कारण था। शायद उतना गलत भी नहीं था।

इसके अलावा, एक और चीज़ से असहमति महसूस होती थी। वह था, भारतीय इतिहास को हमेशा उत्तर की तरफ से देखा जाना। भले ही शुरुआत में और काफी लम्बे समय तक राजनैतिक घटनाओं का केन्द्र मुख्यतः उत्तर भारत रहा लेकिन इसका मतलब यह भी नहीं कि दक्षिण या उत्तर-पूर्व में कुछ हो ही नहीं रहा था, जो कुछ भी होता रहा था, वह सिर्फ उत्तर में ही! आखिर भारत का इतिहास उत्तर-पूर्व या दक्षिण की तरफ से शुरू करके क्यों नहीं पढ़ा-पढ़ाया जाना चाहिए? यह बात सामाजिक अध्ययन प्रशिक्षण कार्यशालाओं में उठी भी थी। अनौपचारिक तौर पर थोड़ी-बहुत चर्चा भी हुई थी। लेकिन फिर प्रशिक्षण के तयशुदा कार्यक्रम के बीच कहीं छूट गई।

एक और बात थी। दक्षिण या उत्तर-पूर्व भारत को भारतीय इतिहास में बहुत कम जगह दी जाना। भूगोल में तो फिर भी उत्तर-पूर्व को जगह मिल जाती है लेकिन इतिहास में तो बिलकुल भी नहीं मिलती। आठवीं तक का इतिहास पढ़ चुका छात्र उत्तर-पूर्व के इतिहास के बारे में पूरी तरह से अनजान होता है और दक्षिण के इतिहास के बारे में भी वह बहुत थोड़ा-सा ही जानता है जबकि उत्तर भारत के इतिहास की छोटी-से-छोटी जानकारी उसे विस्तार से दी गई होती है।

एक था राजा, एक थी रानी...

जहाँ तक बच्चों की बात है, आज के बच्चे भले ही न सही लेकिन इनके पहले के तमाम बच्चे बिलकुल छुटपन से राजा-रानी वाली कहानियाँ सुना करते थे जो ज़्यादातर फैंटसी की शक्ल में हुआ करती थीं। इसके बावजूद, उनसे बच्चों के भीतर बीते वक्त या कहें कि एक तरह के 'इतिहास' को लेकर हल्का-सा जिज्ञासा भाव पैदा होता था। मोटे तौर पर इन्हें दादी-नानी की कहानियाँ कहा जाता था क्योंकि ज़्यादातर दादियाँ-नानियाँ ही इन्हें सुनाती थीं। रात को सोने से पहले! बच्चे बहुत बार इन्हें सुनते-सुनते ही सो जाते थे। कहानियों को आधा-अधूरा छोड़कर! अब वे दादियाँ-नानियाँ नहीं रहीं। ज़ाहिर है, बीते वक्तों की गन्ध से भरी उनकी कहानियाँ भी नहीं रहीं।

'एक था राजा, एक थी रानी...' ये सभी कहानियाँ सामान्यतः इसी तरह शुरू होती थीं। एक मंत्री होता था और राजकुमार या राजकुमारी होते थे। राजा दुष्ट या अच्छा होता था। मंत्री उससे उलट! और कहानी चलती रहती थी। आगे कई लोग या अलग-अलग चीज़ें आती-जाती थीं। जादूगर, राक्षस, साधु-महात्मा, उड़ने वाला घोड़ा वगैरह। बरसों पहले रेडियो पर के.एल. सहगल का गाया एक गीत बजा करता था – 'एक राजे का बेटा लेकर उड़ने वाला घोड़ा...'। सो, राजा, राजकुमार, उड़ने वाला घोड़ा जैसी चीज़ें गीतों से लेकर कहानियों तक में होती थीं। एक विराट फैंटसी! इन कहानियों में एक काल्पनिक बीता हुआ समय होता था। बच्चे उससे खुद को जुड़ा महसूस कर पाते थे। कभी-कभी ये कहानियाँ विक्रम-बेताल, सिंहासन बत्तीसी इत्यादि से होती हुई पौराणिक आख्यानों तक चली आती थीं। इन सबके ज़रिए बच्चे में एक खास तरह का अतीत बोध विकसित होता है। भले ही इस अतीत का बहुत बड़ा हिस्सा काल्पनिक, मनगढ़न्त और अतिरंजित होता हो! जो भी हो, इसी अतीत बोध से रास्ता निकलता है, इतिहास बोध का!

इतिहास के धुँधलके में छिपे सच!

बहरहाल, इस नवाचारी सामाजिक अध्ययन के इतिहास खण्ड में एक

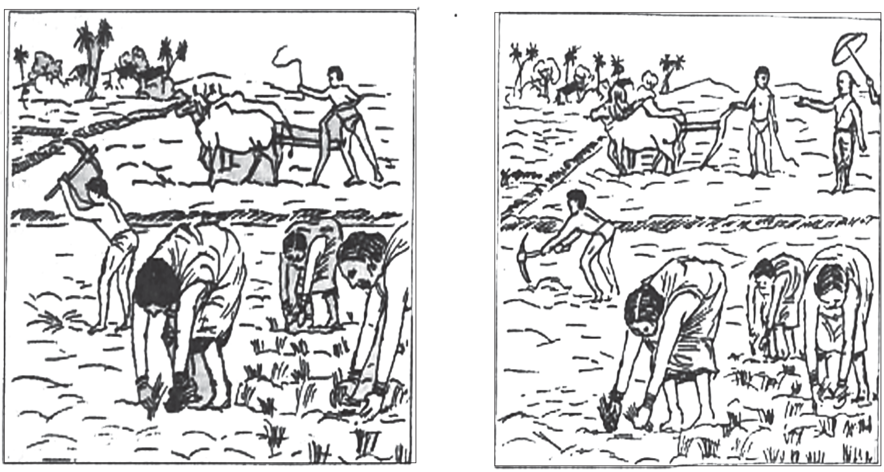

तलैच्छंगाडु में जो परिवर्तन हुये, वे इन दो चित्रों में दिखाये गये हैं। इन दो चित्रों में क्या परिवर्तन तुम्हें नज़र आते हैं?

चित्र-1: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'दक्षिण भारत के गाँव - तलैच्छंगाडु गाँव, सन् - 950-1250' का एक चित्र।*

चित्र-2: कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'कैसे पता करें - क्या हुआ, क्या नहीं हुआ' से सुल्तान मोहम्मद तुगलक के राजधानी स्थानान्तरण को दर्शाता चित्र।

चीज़ तो खास तौर पर हुई – उसे तारीखों और राजा-नवाबों के बोझ से काफी हल्का किया गया। कोशिश की गई कि बच्चे अपने देश-समाज के गुज़रे हुए समय को जानें-समझें। उसके अधिक-से-अधिक समूचेपन में। इसीलिए, इनका जितना और जैसा भी ज़िक्र था, वह बीते हुए समय को ठीक से जानने-समझने के लिए बतौर माध्यम ही था। उनके ज़रिए बहुत सारी चीज़ें खुलती थीं। खास बात तो यह कि पाठों के भीतर चित्र, नक्शे वगैरह से सम्बन्धित जो विभिन्न गतिविधियाँ दी गई थीं, वे बच्चों को सक्रिय तो रखती ही थीं, इसके अलावा इतिहास को लेकर एक ज़रूरी किस्म की वस्तुनिष्ठ समझ भी विकसित करती थीं। हालाँकि, इतिहास में वस्तुनिष्ठता को लेकर अलग तरह की बहस रही है। और उसका बहुत दूर तक निर्वाह थोड़ा-सा मुश्किल भी देखा गया है। किस्म-किस्म के आग्रह-दुराग्रह तो अपनी जगह हैं ही, अलग-अलग दृष्टिकोण भी इतिहास लेखन को प्रभावित करते रहे हैं। इसी के चलते इतिहास की घटनाओं की अलग-अलग व्याख्याएँ सुनने-पढ़ने को मिला करती हैं। बीच-बीच में इतिहास के पुनर्लेखन की माँग भी उठती रहती है। कई बार किसी घटना-विशेष का कोई अन्तिम रूप या सत्य निर्धारित कर पाना कठिन हो जाता है।

इस समस्या या संकट को समझने के लिए सातवीं के इतिहास खण्ड में सुल्तान मोहम्मद तुगलक द्वारा अपनी

राजधानी दिल्ली से दौलताबाद स्थानान्तरित करने की घटना को उस समय के दो इतिहासकारों के नज़रिए से देखने की कोशिश की गई। ज़िया बरनी (तारीख ए फिरुज़शाही) और एसामी (फुतुह उस सालतिन) ने सन् 1328 की इस घटना का एक-दूसरे से बिलकुल उलट वर्णन किया है। एसामी ने जहाँ इस योजना का एक कुत्सित और अव्यावहारिक योजना की तरह वर्णन किया है, वहीं बरनी ने सहानुभूतिपूर्ण वर्णन करते हुए उसे एक अच्छी एवं फायदेमन्द योजना बताया है। दोनों के पास ऐसा करने के अपने-अपने कारण थे। निश्चय ही, इतिहास के अध्ययन के लिहाज़ से यह एक बहुत महत्वपूर्ण पाठ है। रोचक तो है ही! बच्चों को राजधानी परिवर्तन की घटना का दो अलग-अलग तरह का वर्णन पढ़कर मज़ा भी काफी आया और वे यह जान सके कि लिखित या किसी और तरह का प्रमाण होते हुए भी अतीत की किसी घटना के वास्तविक सत्य का पता लगा पाना कितना कठिन और उलझा हुआ काम हो सकता है! खासकर, जब प्रमाण अन्तर्विरोधी हों। इतिहास जानने के साधनों पर प्रचलित पुस्तकों में भी जानकारियाँ दी गई थीं। लेकिन इस पर चर्चा नहीं की गई थी कि इन साधनों के ज़रिए भी सही तथ्यों का पता लगा पाना और अन्तिम रूप से कुछ कह पाना कितना मुश्किल हो सकता है। साथ ही, उन साधनों की अपनी सीमाएँ और समस्याएँ भी हो सकती हैं। और कई बार ज्ञान के क्षेत्र में 'अन्तिम सत्य' का प्रश्न सन्देहास्पद ही बना रहता है। हमेशा नई खोज पुराने स्थापित सत्य को अपदस्थ कर देती है। हालाँकि, वह सत्य अप्रासंगिक नहीं हो जाता। किसी-न-किसी अर्थ में उसकी अपनी उपयोगिता बनी रहती है। यह पाठ इस चीज़ को बहुत अच्छी तरह से स्पष्ट करता था। इतिहास की पढ़ाई शुरू करने के पहले इस तरह के पाठ से गुज़रना बच्चों में ज़रूरी सावधानी विकसित करने में सहायक हो सकता है।

पुरानी चीज़ों, किताबों और इमारतों से आती इतिहास की आवाज़ें!

इस पाठ को पढ़ाने के दौरान मैंने सामान्यतः यह बात कही कि हमारे घरों में या आसपास ऐसी बहुत पुरानी चीज़ें हो सकती हैं जिसके ज़रिए हमें पुराने समय के बारे में बहुत सारी न सही, लेकिन कुछ-न-कुछ तो जानकारी हासिल हो सकती है। पुराने बरतन, पुराना सामान, पुरानी किताबें! यह इतिहास जानने के साधनों के सिलसिले में कहा था। बच्चों ने सुना, इस बारे में छोटी-मोटी ही बात हुई और पीरियड खत्म हो गया। ठीक अगले दिन तो नहीं लेकिन उसके आगे वाले दिन एक बच्चा मेरे पास एक किताब लेकर आया।

"सर, म्हारा घरे पुरानी पेटी में या किताब थी!" उसने किताब देते हुए कहा। मैंने किताब ली। किताब के पीछे के कुछ पेज फटे हुए थे। पीले पड़ चुके पन्ने। बड़े अक्षरों में छपाई। पतली-सी किताब! मैंने एक बार उसे उलटा-पलटा। वह किताब जिससे पुराने कागज़ों की गन्ध आ रही थी, कुछ-कुछ परिचित-सी लगी। कवर पेज तो फट गया था लेकिन उसके बाद वाला मतलब पुस्तक परिचय वाला पन्ना सुरक्षित था। उस पर नज़र डाली। वह प्राथमिक कक्षा की हिन्दी की किताब थी। सन् डला था – 1956, भीतर कुछ चमका। एक बार फिर टटोला। किताब उस समय की थी जब खुद मैं पश्चिम निमाड़ ज़िले के छोटे-से गाँव ऊन के स्कूल की कक्षा दूसरी-तीसरी में पढ़ता था। किताब को उलटते-पलटते ही कुछ पाठ तुरन्त याद आ गए। 'नाना ने नानी को खींचा। नानी ने मुनिया को खींचा। मुनिया ने मूली को खींचा। मूली ज़मीन से बाहर आ गई...'। ठीक-ठीक यही तो नहीं लेकिन ऐसा ही कुछ! चित्र भी याद आ गया। अपनी बाड़ी की मूली उखाड़ती मुनिया। मुनिया को खींचती हुई उसकी नानी। उसे खींचते नाना...! देखा, तो चित्र वगैरह सब अपनी जगह वैसे ही थे। अन्य पाठ भी। सब कुछ एकदम से याद आ गया। उस समय पढ़ने के बाद वह किताब मैं अब फिर से देख पा रहा था। कई दशकों बाद! इस बीच फिर कभी वह मुझे देखने को नहीं मिली थी। बीच-बीच में याद ज़रूर आती रही थी। अब वही मेरे हाथ में थी। और मैं अपने ऊन के स्कूल की कोने वाली कक्षा में था। कुकड़े सर पढ़ा रहे थे। खिड़की के बाहर हल्की-हल्की बारिश हो रही थी। और मुनिया अपनी बाड़ी से मूली उखाड़ने की कोशिश कर रही थी।

अचानक मुझे कुछ सूझा। लगा कि अगर यह बच्चा इतिहास जानने के साधनों के तहत अपने घर से इतनी पुरानी किताब ढूँढकर लाया है तो इसका उपयोग इसी रूप में किया जा सकता है। और फिर मैंने बच्चों को उस किताब के माध्यम से बताया कि यह किताब किस तरह से हमें बताती है कि 45-50 साल पहले लोग अपनी दूसरी-तीसरी की किताबों में क्या पढ़ते थे। चित्रों से पता चल सकता है कि वे कपड़े हमारे जैसे ही पहनते थे या किसी और तरह के। लेन-देन के लिए जो पैसे इस्तेमाल होते थे, वे अभी जैसे थे या अलग तरह के वगैरह। इसी तरह की अन्य तमाम बातें। फिर बच्चों ने भी बारी-बारी से उलटा-पलटा। उन्हें बात कुछ-कुछ समझ में आई। क्लास में चर्चा शुरू हुई। "पेला का लोग..." (पहले के लोग...) और "पेला को जमानो..." (पहले का ज़माना...), उनकी बातचीत में ये जुमले लगातार सुनाई दे रहे थे। और वे अपने घरों में बड़ों से सुनी

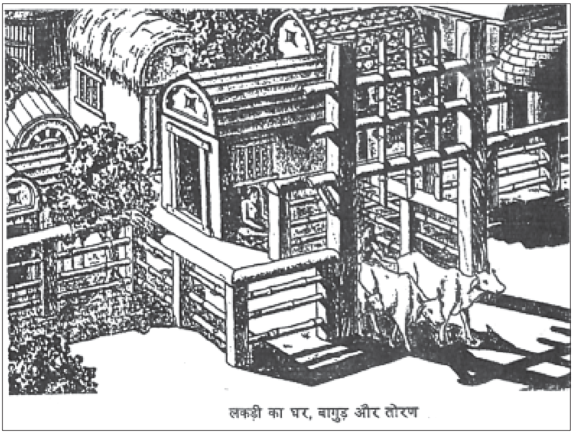

चित्र-3: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'पुरानी इमारतें' का एक चित्र। सिन्धु घाटी के शहरों के नष्ट होने के बाद बहुत लम्बे समय तक ईंट की इमारतें नहीं बनीं। लोग लकड़ी व मिट्टी से ही घर व इमारतें बनाते थे। लकड़ी के होने के कारण ये घर व इमारतें सड़कर खत्म हो गईं। इनके बहुत कम निशान मिलते हैं, फिर भी जो निशान मिलते हैं, उनसे जान पड़ता है कि जनपदों के समय में लकड़ी से बने घर, बागुड़ और तोरण द्वार का दृश्य शायद ऐसा दिखता था।*

बातें, अपने शब्दों में आपस में सुना रहे थे।

इतिहास जानने के साधन

सामाजिक अध्ययन की प्रचलित पुस्तकों में इतिहास जानने के साधनों की चर्चा परिचयात्मक रूप में पाठ्यपुस्तकों के शुरू के पाठों में ही कर दी जाती है। एक ही जगह! लेकिन, इन पुस्तकों में ऐसा न करते हुए, अलग पाठों के माध्यम से इन साधनों की जानकारी दी गई थी। अगर छठी कक्षा का 'शिकारी मानव' पाठ शैल चित्रों, पत्थर के हथियार और औज़ारों की चर्चा करता था तो 'सबसे पुराने शहर – सिन्धु घाटी के शहर' में खुदाई में मिले खिलौने, मकानों के अवशेष, बरतन, मूर्ति इत्यादि की जानकारी दी गई थी। जबकि 'राजा अशोक' पाठ में शिलालेखों की! पुराने शहर सियडोणि की सारी जानकारी वहाँ की खुदाई में मिले एक लम्बे शिलालेख में दर्ज थी। पुराने सिक्कों की बात कई पाठों में

चित्र-4: *साँची स्तूप का चित्र। इसके निर्माण के वक्त तक इमारतों में पत्थरों का इस्तेमाल होने लगा था।*

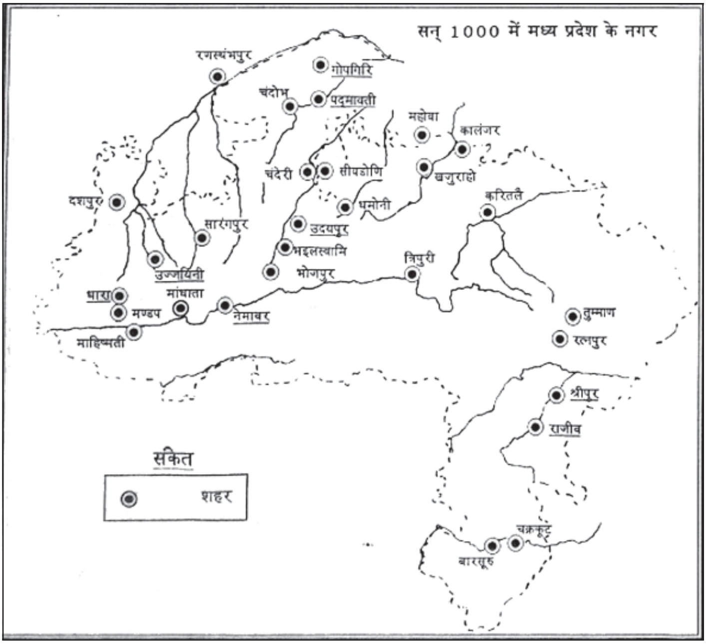

चित्र-5: *कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'एक पुराना शहर - सीयडोणि' का एक चित्र। सन् 900 के लगभग अपने देश के कोने-कोने में शहर बस रह थे। इनमें से कई सीयडोणि की तरह नष्ट हो गए - मगर बहुत सारे आज भी आबाद हैं। एकीकृत मध्यप्रदेश में भी ऐसे बहुत सारे शहर थे जिनमें से कई सारे शहर सीयडोणि की तरह नष्ट हो गए हैं। आज वहाँ केवल उनके खण्डहर बचे हैं - टूटे मन्दिर, ईंट और पत्थर के ढेर, एवं दूर-दूर तक बिखरी हुई खण्डित मूर्तियाँ।*

की गई थी। सातवीं के पाठ 'पुरानी इमारतें' में बहुत पुराने भवनों के माध्यम से किसी समय-विशेष के बारे में पता करने की पद्धति बताई गई थी। गाँव मानकुण्ड में बहुत पुरानी कोई इमारत तो थी नहीं, गाँव के बाहर स्कूल के पास एक शिव मन्दिर ज़रूर था जिसके आसपास मूर्तियों के अवशेष रखे थे। कुछेक बार मैंने अपनी कक्षा वहीं लगाई थी। चार स्कूलों के बाल मेले का प्रश्नमंच वहीं आयोजित हुआ था। बच्चों से कक्षा में मूर्तियों के अवशेषों पर चर्चा हुई थी। बच्चों से अपने घरों से उन मूर्तियों के पुरानेपन को लेकर जानकारी निकलवाकर लाने की कोशिश भी की थी। लेकिन बात ज़्यादा कुछ बनी नहीं थी।

इन पाठों को पढ़ाते समय यह ज़रूर लगा था कि बच्चे उस तरीके या विधि के बारे में पूछ सकते हैं जिससे खुदाई आदि में मिली चीज़ों की उम्र पता की जाती है। मैं भी तय नहीं कर पाया कि मुझे अपनी ओर से

बताना चाहिए या नहीं! शिक्षक साथियों के बीच ज़रूर एक दिन बीच की छुट्टी में इस बारे में थोड़ी-बहुत बात हुई थी। सूर्याजी ने पेड़ों की उम्र पता करने की विधि समझायी थी। खैर।

चित्र-6: सीयडोणि मण्डी। कक्षा सातवीं के इतिहास खण्ड के पाठ 'एक पुराना शहर - सीयडोणि' का एक चित्र।

एक शिलालेख में सन् 906 की एक घटना के बारे में लिखा है, 'सीयडोणि में रहने वाले महाप्रतिहार महासामन्ताधिपति श्री उन्दभट ने सारे अधिकारियों को सूचित किया - नारायण भट्टारक के मन्दिर में पूजा-पाठ के लिए यह व्यवस्था की जा रही है कि सीयडोणि के मण्डपिक (यानी मण्डी) में से रोज़ मन्दिर को कुछ सोने के सिक्के दिए जाएँगे। जब तक चांद और सूरज रहेंगे तब तक यह व्यवस्था जारी रहेगी। अगर कोई इसका विरोध करे (बाधा डाले) तो उसे पाँच महापाप लग जाएँगे। यह उन्दभट के हस्ताक्षर हैं।'

प्रकाश कान्त: हिन्दी से एम.ए. और रांगेय राघव के उपन्यासों पर पीएच.डी. की है। शीर्ष पत्र-पत्रिकाओं में कहानियाँ एवं आलेख प्रकाशित। चार उपन्यास – *अब और नहीं, मक्तल, अधूरे सूर्यों के सत्य, ये दाग-दाग उजाला*; कार्ल मार्क्स के जीवन एवं विचारों पर एक पुस्तक; तीन कहानी संग्रह – *शहर की आखिरी चिड़िया, टोकनी भर दुनिया, अपने हिस्से का आकाश*, संस्मरण – *एक शहर देवास, कवि नईम और मैं*, और फिल्म पर एक पुस्तक – *हिंदी सिनेमा: सार्थकता की तलाश* प्रकाशित हो चुकी हैं। लगभग 30 वर्षों तक ग्रामीण शालाओं में अध्यापन।

सभी चित्र: *एकलव्य* द्वारा विकसित सामाजिक अध्ययन, म.प्र. पाठ्यपुस्तक निगम, कक्षा-7 से साभार।

यह लेख *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित पुस्तक *सामाजिक अध्ययन नवाचार* से साभार।

अद्भुत संवेदनाओं का कोलाज

उपासना

बहुत वक्त पहले दो ईरानी फिल्में देखी थीं - *चिल्ड्रन ऑफ हेवन* और *टर्टल्स कैन फ्लाइ*। इन अद्भुत फिल्मों ने मेरी समझ का दायरा एक अलग ही तरीके से खोल दिया। सच कहूँ तो, जिस तरह से ये फिल्में आगे बढ़ती हैं, मुझे ऐसा लगता रहा जैसे मैं दो-ढाई घण्टे तक कोई सुन्दर किताब पढ़ती रही। संवेदनाओं के गहन स्तरों पर काम करने वाली ये फिल्में, बेहद शाइस्तगी से सामाजिक उथल-पुथल को मानो विवरणात्मक नोट्स की तरह दर्ज करती जाती हैं। इन फिल्मों को देखने के बाद ईरान के बाल साहित्य को जानने की इच्छा तीव्र हो गई थी। लेकिन वहाँ की भाषा से अनभिज्ञ होने की वजह से मैं उन तक पहुँच नहीं पा रही थी।

फिर मेरा वास्ता *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित कुछ अनुदित ईरानी बाल साहित्य की पुस्तकों से पड़ा। इनमें सबसे पहले मैंने फारिदेह खल्अतबरी को पढ़ा और लगातार उनकी 4-5 किताबें पढ़ डालीं। इन कहानियों को पढ़ते हुए मन ही मन कितने सारे प्रश्न, कितने उत्तर, कितनी उलझनें, कितने दृश्य...बहुत देर तक साथ-साथ चलते रहे, जिन्हें मैं लिखती चली गई।

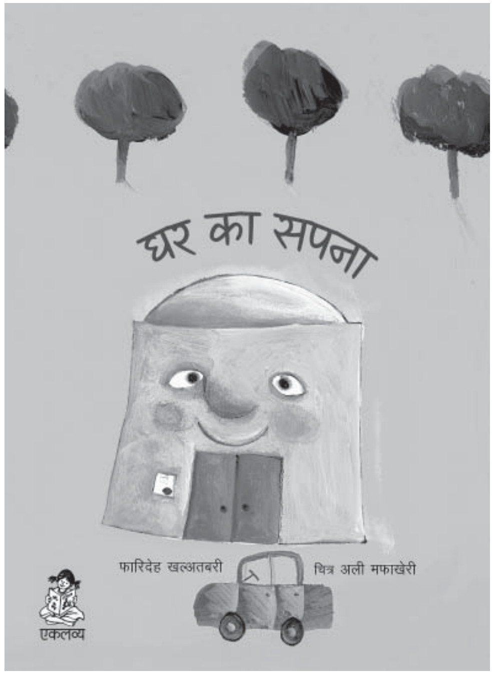

घर का सपना

इस किताब का शीर्षक बहुत-से अर्थों से भरा हुआ है। किन्तु पहली बार यह नाम सुनकर कुछ अजीब-सा लगता है - घर का सपना? क्या घर का भी कोई सपना होता होगा? हाँ, शायद होता तो होगा ही... वैसे ही

जैसे किसी मनुष्य का सपना! जैसे किसी देश का सपना! कहानी शुरू होती है घर की एक ख्वाहिश से।

घर में रहने वाले लोग जल्द ही वहाँ से जाने वाले थे, इस वजह से घर दुखी था। जल्द ही उस घर में दूसरे लोग आकर रहने वाले हैं। पर, घर स्थिरता चाहता है। वह ऐसा परिवार चाहता है जो उससे प्यार करे, उसमें हँसी-खुशी रहे और उसे सचमुच अपना घर समझे। बार-बार लोगों का जाना और नए लोगों का आना, उसे परेशान करता है। वह अपने आसपास के घरों को अपने स्थिर परिवारों के साथ सुख से रहते देखता था और सोचता था... काश! वह भी ऐसे ही रह पाता। घर की ख्वाहिश थोड़ी अनोखी लगती है, पर देखा जाए तो यह कोई असामान्य ख्वाहिश नहीं है। दीवारों के एक छोटे-से घेरे में एक परिवार खुशी से रहता है। बिना दीवारों का एक घर, देश भी तो होता है न?

घर का मालिक कुछ स्वार्थी और बदमज़ा-सा एक शख्स है। पैसों की चाह में वह किरायेदारों को हटाता रहता है। घर यह जानता है कि इस मालिक के रहते स्थिरता पाने का उसका ख्वाब शायद कभी पूरा न हो पाएगा। फिर? उसके बाद क्या? आखिर एक शुष्क दीवारों वाला खामोश घर कर ही क्या सकता है? पर कहानी की चाबी वास्तव में इसी सवाल में छुपी है कि एक घर शान्ति और खुशी पाने की अपनी चाह को पूरा करने के लिए क्या-क्या तरकीबें अपनाता है। क्या घर का यह सपना वाकई पूरा हो पाएगा? यह एक दिलचस्प कहानी है।

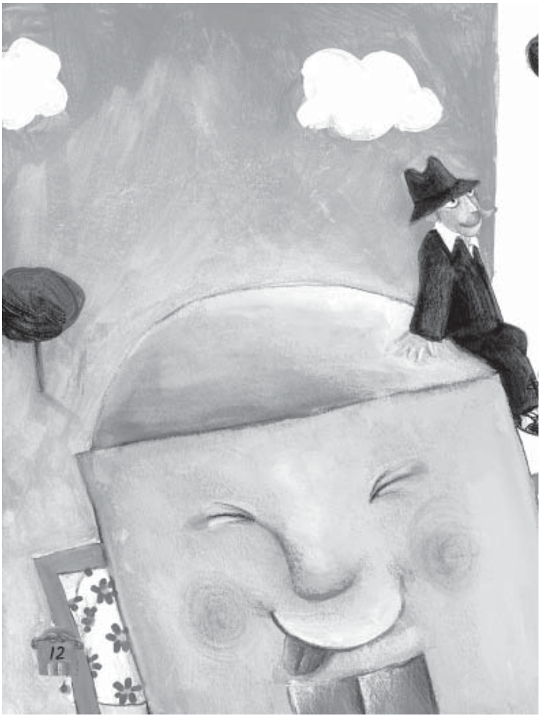

अशान्ति जैसे हालात बने हुए हैं। इसके बरअक्स सोचें तो, लम्बी सरहदों वाला बेदिवारों-दर का घर, आखिर खुशी और अमन की ख्वाहिश क्यों न रखे? ढूँढने और पढ़ने पर यह भी मालूम हुआ कि उस मुल्क में खुलेआम ख्वाहिशों, सपनों और बगावत पर सख्त पाबन्दी है। लेकिन एक कलमघिस्सु की परेशानी यही है कि यदि वह बगावत और ख्वाहिशों की बातें न करे तो फिर वह

खुशदिल घर की शक्ल, उसके भीतरी भावों के साथ बदलते चेहरे की मुद्राएँ - इन सबका बहुत-ही खूबसूरत चित्रण है। अली मफाखेरी ने गाढ़े रंगों का प्रयोग किया है ताकि आँखों में न चुभें। घर की ख्वाहिश की तरह ही इस पुस्तक के चित्रों के रंग - गाढ़े, व्यग्र किन्तु कोमल हैं! कवर पर पीला रंग अलग-अलग शेड में इस्तेमाल किया गया है। किताब के अन्दर भी पीले रंग की अधिकता है - शायद रोशनी के लिए या शायद इसलिए कि घर उम्मीद और भावुकता से भरा है।

यदि इस कहानी की भीतरी तहों में जाएँ, तो हम पाते हैं कि इस घर का भौगोलिक परिवेश ईरान के किसी कस्बे का आस-पड़ोस है। पिछले कई वर्षों से ईरान में अस्थिरता, युद्ध,

क्या करे? वैसे दुनिया के ज़्यादातर घर ऐसे ही होते जा रहे हैं। तो मोहतरमा फारिदेह खल्अतबरी ने अपनी बात कहने के लिए बच्चों की ज़ुबान चुनी। कहानियाँ सुनाने के लिए बतौर श्रोता, उन्हें बच्चे अधिक प्रिय और ज़हीन लगे। अपने सपनों को बाँटने के लिए बच्चों से अधिक मुफीद कौन हो सकता है भला? पुर-उम्मीद दिनों के ख्वाबों को आगे लेकर चलने का काम आखिर इनका ही तो है।

जल्द बहुत जल्द

इस कहानी की शुरुआत एक प्रश्न से होती है। सवाल एक बच्ची ने पूछा है। जवाब उसकी माँ देती है। माँ का जवाब उम्मीद भरी अनिश्चितता में डूबा हुआ है। और वही अनिश्चित-सा खोया हुआ जवाब, इस कहानी का

शीर्षक है... *जल्द बहुत जल्द!* बहुत कम शब्दों की यह एक बहुत लम्बी कहानी है। राजनैतिक अस्थिरता और विस्थापन से इसके सिरे जुड़े हुए हैं। इस कहानी का कमाल यह है कि इसमें बुनी हुई चुप्पियाँ और कभी-कभी कोई एक शब्द भी इस कहानी के समानान्तर दूसरी छोटी कहानी रच देता है। जैसे कि बच्ची पूछती है, 'अब्बू कब आएँगे?' जवाब में लिखा है, 'अम्मी सिहर उठीं।' और इतने से जवाब से ही पाठक के मन में सवालों का गुच्छा खुलने लगता है। साथ ही साथ, उनके जवाब भी।

बच्चों के सवाल बच्चों जैसे ही होते हैं - सीधे, स्पष्ट... बिना पेंच-ओ-खम के। शायद इसलिए इन सवालों के जवाब देना सबसे मुश्किल काम होता है। माँओं के पास बच्चों के इन मुश्किल सवालातों और ख्वाहिशों के लिए पीढ़ियों से आज़माया हुआ बना-बनाया जवाब तैयार रहता है, "जल्द बहुत जल्द!" पूरी कहानी में इस जवाब की अनुगूंज है। जाने यह कैसी जल्दी है, जो पूरी होने में नहीं आती? बच्ची अपनी माँ से पिता के विषय में पूछती है और माँ अपने बचपन की स्मृतियों में खो जाती हैं। उन स्मृतियों में एक छोटी बच्ची अपनी माँ से अपनी दोस्त की गुड़िया जैसी खूबसूरत गुड़िया की माँग करती है। बदले में माँ उसे मीठे बहाने की पर्ची थमा देती है, "जल्द रानी, बहुत जल्द!" हालाँकि, बच्ची धीरे-धीरे समझने लगी कि यह 'जल्द बहुत जल्द' का सफर वास्तव में बहुत लम्बा है।

किसी भी समाज में इससे बड़ी विडम्बना क्या हो सकती है जब बच्चे अपने सवालों की निरर्थकता को समझने लगें? कहानी में, कहानी के समानान्तर एक नुकीला सवाल चुभता रहता है कि 'अब्बू कहाँ हैं?' बच्ची के पिता कहाँ हैं? बच्ची की माँ के पिता भी कहाँ थे? यह कहानी इस बात का सच्चा दस्तावेज़ है कि युद्ध के निरन्तर अँधेरे में कितनी पीढ़ियाँ, कितने अब्बू खो जाते हैं! शब्दों के बेहद किफायती इस्तेमाल से भी, हमें घर का माहौल, रोज़ी-रोटी और आसपास के माहौल की बखूबी

जानकारी हो जाती है। फारिदेह खल्अतबरी के लेखन की सबसे खूबसूरत बात यह है कि वे मनुष्य की भीतरी भावनाओं - खामोशी और अकेलेपन को बेहद बारीकी-से पकड़ती हैं। लेकिन ये भाव, यह अकेलापन, ये पीड़ाएँ इकहरी नहीं हैं। समाज, समय और दुनिया की हिंसा से जूझते ये चरित्र जिजीविषा से भरे हैं। इनके बोल-चाल और रंग-ढंग से अस्थिरता से जूझते देश की तस्वीर सहज ही उभर आती है।

इस कहानी के चित्र अली नामवर द्वारा बनाए गए हैं। मुझे ये चित्र खूबसूरत, मगर थोड़े उलझाने वाले लगे। मनुष्यों की आकृतियों में कभी मक्खी की छायाएँ उभरती दिखीं, कभी चिड़ियों की, तो कभी तितलियों की! लेकिन पंखों की उपस्थिति निश्चित है। किताब के शुरुआती पन्नों पर हरे रंग का इस्तेमाल किया गया है, पर क्रमशः बाकी सारे रंग नेपथ्य में जाते से लगे। सिर्फ काले और लाल की संगत लगातार बनी रही, जो आकर्षक लगी।

अँधेरे का भूत

अँधेरे का भूत एक दिलचस्प कहानी है। साथ ही, यह सामाजिक एवं भावनात्मक शिक्षण पर बहुत गैरमालूम ढंग से बात करती है। देखा जाए तो यह व्यक्ति और समाज के बीच सम्बन्धों में मौजूद सीमाओं की बात करती है।

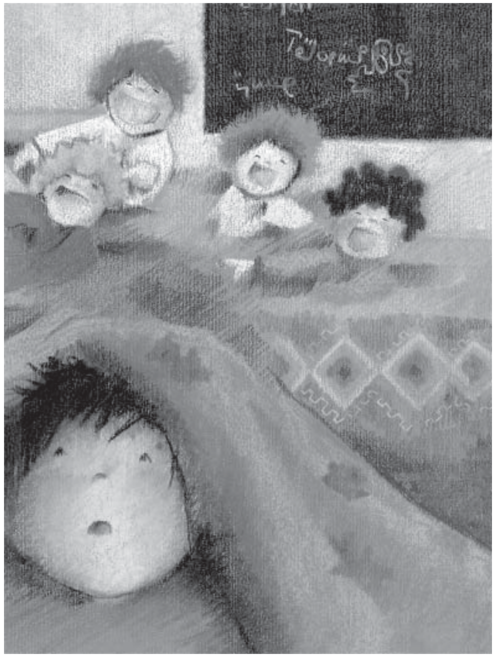

अँधेरे से डरने वाले बच्चे को उसके दोस्त अजीबोगरीब हरकतों से डराते हैं और उसका मज़ाक उड़ाते हैं। वे उसे ‘नन्हा चूहा’ कहते हैं। वह डरता है। गिरते-पड़ते घर की ओर जाता है। उसके कपड़े गंदे हो गए थे, फट गए थे और चोटों से खून बह रहा था। तभी कहानी में एक मोड़ आता है - अँधेरे के भूत से बच्चे की दोस्ती हो जाती है। दोस्ती होना तो एक बड़ी सुन्दर बात थी, पर इसके बाद जो हुआ, वह गड़बड़ था। अँधेरे के भूत से दोस्ती होने के बाद, होना यह चाहिए था कि बच्चा अपने डर से

बाहर निकल आता और आत्मविश्वासी बनता। परन्तु डर से निकलते ही बच्चे के ज़हन में जो पहला खयाल आया, वह बदला लेने का था। अब अँधेरे का भूत इस नन्हे बच्चे के कहने पर दूसरे बच्चों को डराता और परेशान करता है। बच्चे ने खुद को मज़बूत बनाने की बजाए दूसरों को परेशान करना चुना। पर गलत होकर गलत के खिलाफ खड़े होना... सही नहीं है। आगे कहानी में जो हुआ, वह दिलचस्प है।

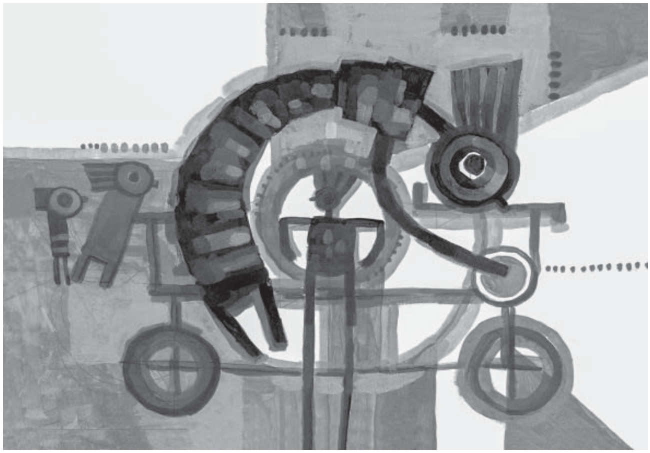

किताब में नसीम आज़ादी द्वारा बनाए गए चित्र रुचिकर हैं। कलर पेंसिल से बने धुँधले विज़न के चित्रों में चेहरे के हाव-भाव पर बढ़िया काम किया गया है।

जागता सपना

"हाँ, मैं एक स्वप्नदर्शी हूँ, क्योंकि स्वप्नदर्शी वह व्यक्ति होता है जो केवल चाँदनी में ही अपना रास्ता खोज सकता है और उसकी सज़ा यह होती है कि वह बाकी दुनिया से पहले भोर देख लेता है।"

- ऑस्कर वाइल्ड

जागता सपना फारिदेह खल्अतबरी द्वारा लिखी गई एक खूबसूरत कहानी है। यह एक छोटी बच्ची और उसकी दादी के बीच के रिश्ते तथा सपने साझा करने की कहानी है। कहीं-कहीं यह कहानी जादुई रहस्य जैसी लगने लगती है। दादी बच्ची को 'नन्ही जीनियस' कहती हैं और बच्ची इस बात पर पूरे मन से विश्वास करती है। लेकिन जब वह स्कूल जाने लगती है तो शिक्षिका उसका नाम पूछती हैं। बच्ची अपना नाम 'नन्ही जीनियस' बताती है, जिस पर शिक्षिका उस बच्ची को समझने की बजाए ज़ोर-से डाँट देती हैं। इस वजह से बच्ची सबसे रूठ जाती है। रूठी हुई बच्ची मिट्टी से बहुत सारी कलाकृतियाँ बनाती है। अपना समय वह इन्हीं चीज़ों में बिताती है। एक बार बच्ची अपने नाम 'जीनियस' पर सन्देह भी

करती है, पर दादी को उसके जीनियस होने पर कोई शक-शुब्हा नहीं! जब बच्ची दादी से 'जीनियस' का अर्थ पूछती है, तो दादी का उत्तर गौर करने लायक होता है। बच्ची के पिता कहते हैं... "जीनियस का अर्थ है, ऐसा इन्सान जो दूसरों से ज़्यादा अक्लमन्द हो।" बच्ची की माँ कहती हैं... "जीनियस का अर्थ है, ऐसी चीज़ें करने वाला इन्सान जो और कोई नहीं कर सकता।" पर उसकी दादी कहती हैं... "जीनियस का अर्थ है, सिर्फ तुम, मेरी बच्ची सिर्फ तुम।"

किसी बच्चे को हम उसकी व्यक्तिगत विभिन्नता के साथ स्वीकारें, उसकी विशिष्टता का जश्न मनाएँ और उस पर आस्था रखें, इससे सुन्दर चीज़ और क्या हो सकती है? दादी इस बात को गहराई से समझती हैं इसलिए उनकी 'जीनियस' की परिभाषा में किसी से बेहतर होना नहीं है, बल्कि वह होना है जो एक बच्चा अपनी वास्तविकता में है।

इस बीच, गर्मी की छुट्टियों में जब बच्ची दोबारा दादी के यहाँ जाती है, तो दादी की झुर्रियों भरी हथेलियों के बीच उसे एक रास्ता दिखाई देता है। दादी बच्ची से कहती हैं, "इस रास्ते पर चलती रहो जब तक इसका अन्त नहीं आ जाता।" और इसी रास्ते पर चलते हुए बच्ची के मन में सपनों के बीज पड़ चुके थे। हथेली की उस लकीर पर चलते हुए बच्ची ने जो सपना देखा, असल में वो वह सपना था जिसे मिट्टी से मूर्तियाँ बनाते हुए वह लगातार टुकड़ों में जी रही थी। अली नामवर द्वारा बनाए गए चित्र कहानी को विभिन्न अर्थ और आयाम देते हैं।

नीले लोग

इसका शीर्षक पढ़ने के बाद सबसे पहले मेरी इच्छा नीले रंग का अर्थ जानने की हुई। नीला रंग अपनी उपस्थिति से किस भाव को अभिव्यक्त करता है? इस रंग का जो अर्थ है, पूरी कहानी पढ़ने के बाद थोड़ा उलझाने वाला लगता है। रंग के अर्थ को समझने से पहले, कहानी पर चलते हैं। एक बच्ची एक सुबह उठती है और देखती है कि सभी लोग नीले रंग के हो गए हैं - अम्मी, अब्बू, स्कूल के टीचर, खाला और बच्चे सब नीले रंग के हैं। आखिर, सभी लोग नीले रंग के क्यों दिख रहे हैं? इन सबके बीच से गुज़रते हुए, आखिर में वह अपनी नानी के बगीचे में पहुँचती है। सेब के पेड़ के नीचे बहती नदी में बच्ची ने अपना प्रतिबिम्ब देखा - उसके दो पंख उग आए हैं।

पंख क्यों उग आए, इस पर विचार करते हुए मैं कहानी में पीछे गई। बच्ची को सब नीले क्यों दिख रहे हैं? क्या बच्ची मर गई है? इससे पहले कि मैं इस पर कुछ कहूँ, पहले मैंने पढ़ा कि कहानी की लेखिका इस पर क्या कहती हैं,

"लड़की अकेले मर रही है। उसके

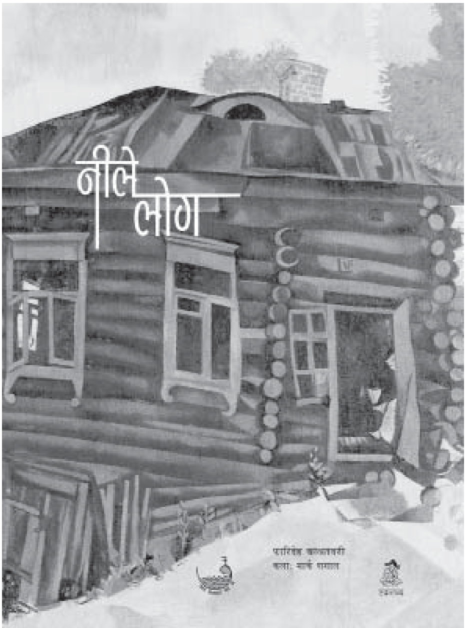

को लेकर कुछ ऐसा ही विचार था क्योंकि उनके चित्रों में बहुत-से नीले लोग हैं। उनकी यह सोच, कहानी और मेरे दिमाग में जो था, उसके साथ पूरी तरह से मेल खाती है। मैंने कहानी को चित्रित करने के लिए कई चित्रकारों से सम्पर्क किया लेकिन मैं उनके काम से सन्तुष्ट नहीं थी।

"अन्त में, मैंने शगाल की पेंटिंग्स का इस्तेमाल किया। किताब के टाइटल के लिए मैंने जो पेंटिंग चुनी, वह दर्शाती है कि इन्सान आधे सामान्य हैं और आधे नीले। आम तौर पर हम उनका केवल सामान्य वाला हिस्सा ही देखते हैं और यह महसूस ही नहीं कर पाते कि वे कितने निर्दयी हो

आसपास कोई भी अपना नहीं है, यहाँ तक कि उसके अपने अम्मी-अब्बा और रिश्तेदार भी अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। उसने अपने आसपास बहुत सारे लोगों को देखा पर वे सब-के-सब नीले हो चुके थे। उसके साथ पढ़ने वाले बच्चे और टीचर - सभी बहुत व्यस्त हैं और कोई भी उसे याद नहीं करता, या उसकी कमी महसूस नहीं करता। हर जगह यही स्थिति है। अन्त में, उस लड़की को महसूस होता है कि वह मर चुकी है और पंखों वाली परी बन गई है।

"मेरे खयाल से मार्क शगाल का भी आसपास के बेदिल या हृदयहीन लोगों

सकते हैं। मैंने लेखक को दर्शाने के लिए तोते को चुना है और शगाल को वैसे ही रखा है, जैसे वे हैं - एक वास्तविक इन्सान। हर पेज के लिए सही पेंटिंग का चुनाव करने में मुझे महीनों लग गए और अब जब भी मैं इस किताब को उठाती हूँ तो मज़ा आता है क्योंकि जो मैं महसूस करती हूँ, वह इसमें दिखता है।"

इसे पढ़ने के बाद भी, मैं पूरी तरह लेखिका से सहमत नहीं हो पाती। कहीं-कहीं मेरे विचार उनसे भिन्न हैं, जैसे कि बच्ची मरने वाली नहीं है बल्कि मर चुकी है। यह जादुई यथार्थ जैसा कुछ है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि

जब कोई कहानी लिखे जाने के दौर से पूरी होकर निकल जाती है, तब वह लेखक की नहीं रह जाती बल्कि पाठक की हो जाती है। अलग-अलग पाठकों के पाठ भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। बाज़ दफा कहानी वह नहीं कहती जो लेखक कहना चाहता है, बल्कि अच्छी कहानी वही होती है जो लेखक के हाथ से छूट जाए और वह कहे जो खुद कहना चाहती है। इसलिए बजाए उस पर विश्वास करने के जो लेखिका कह रही हैं, मैंने वह सुनना चुना जो कहानी कह रही थी - बच्ची मर चुकी है। जब वह कमरे से बाहर आई तो पहली चीज़ जो उसे महसूस हुई कि उससे कोई बात नहीं कर रहा, न ही उसकी तरफ कोई देख रहा है। शायद इसलिए क्योंकि वह किसी को नज़र ही नहीं आ रही थी। लोग नीले रंग के क्यों हैं? जैसा लेखिका ने कहा है, "नीला रंग मेरे लिए एक भावनारहित रंग है, जैसे आकाश नीला है और समुद्र भी नीला है। दोनों ही खूबसूरत दिखते हैं और आकर्षित करते हैं। हम पानी में तैरते हैं, मज़ा उठाते हैं और अचानक पानी हमें अपनी ओर खींच लेता है और चुपचाप मार देता है। आसमान के साथ भी कुछ ऐसा ही है।"

इस बात को मैं थोड़ा अलग ढंग से समझना चाहती हूँ। नीला रंग दिल के घावों को भरने वाला रंग भी होता है। गहरे नीले रंग की छाया विचार प्रक्रियाओं की टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियों को दुरुस्त करती है। किताब में प्रयोग

हुए चित्र मार्क शगाल की पेंटिंग्स हैं जिनमें ज़्यादातर गहरे नीले रंग की छायाएँ ही हैं। दूसरी ओर देखें, तो नीले रंग का आसमान और समुद्र जैसा ही जीवन भी अनन्त और अन्तहीन है। इसलिए चीज़ों या मनुष्यों के पीछे छूट जाने पर भी, जीवन की निरन्तरता पर कोई फर्क नहीं पड़ता। कुछ पल को रुककर यह फिर चल पड़ता है। वैसे भी, खोए हुए को भुलाकर आगे बढ़ना ही जीवन का स्वभाव है। यह एक शाश्वत सत्य है, पर पीछे छूट गए लोगों के लिए यह सत्य पीड़ादायक है। बच्ची जीवन से छिटक गई है। वह हल्के पंखों के साथ हवा में उड़ने वाली है। पर धीरे-धीरे उसे यह एहसास होता है कि सब उसे भूल चुके हैं। उसके न होने से अब किसी को फर्क नहीं पड़ रहा। यहाँ एक और अर्थ सम्भव है। जिस तरह पानी अचानक हमें डुबो सकता है, आसमान में अचानक तूफान उठ सकते हैं, वैसे ही अचानक बच्ची गुज़र गई। जीवन से अलग हो चुकी बच्ची, हर किसी के पास से हवा की तरह गुज़रती है, पर लोग उसे अदृश्य हवा की भाँति ही देख नहीं पाते।

मार्क शगाल की एक प्रसिद्ध पेंटिंग है – द ब्लू हाउस। दिलचस्प बात यह है कि मार्क शगाल का भी प्रिय रंग नीला ही था। उदासी, अकेलेपन और लोक की विविध छवियों को मार्क शगाल ने नीले रंग में बखूबी उतारा है।

* * *

ईरान हमारा नज़दीकी पड़ोसी है। भारत और ईरान के बीच आना-जाना सदियों से होता आ रहा है। फिर भी हम वहाँ की कुछ ही चीज़ों को जानते-समझते हैं, और ज़्यादातर चीज़ें शायद हमारे जानने-समझने से बहुत दूर हैं। खासकर, राजनैतिक उथल-पुथल के इस भीषण दौर में, यह जानना कि पीढ़ियों से वहाँ के बच्चे क्या देखते और सहते आ रहे हैं, किस तरह का उनका बचपन है - निहायत ज़रूरी है। क्योंकि संवेदना के स्तर पर जुड़ने का पहला चरण जानना और समझना ही होता है। साहित्य यह काम बखूबी करता है। *एकलव्य* द्वारा हिन्दी में उपलब्ध कराई गईं फारिदेह की ये किताबें इस बात को निस्सन्देह ही सुनिश्चित करती हैं। लेखिका की आगामी किताबों का इन्तज़ार रहेगा।

उपासना: कुछ वर्षों के अध्यापन के पश्चात् अब स्वतंत्र लेखन करती हैं। उनके दो कहानी संग्रह, एक बाल उपन्यास तथा एक बाल नाटक प्रकाशित हुए हैं। 'भारतीय ज्ञानपीठ नवलेखन' पुरस्कार सहित दो अन्य प्रतिष्ठित सम्मान प्राप्त।

सभी चित्र इन पुस्तकों - *घर का सपना, जल्द बहुत जल्द, अँधेरे का भूत, जागता सपना* और *नीले लोग* से साभार।

पुराने पेड़ की बातें

शरद जोशी

तभी एकाएक पेड़ से आवाज़ आई, "साहित्य समाज का दर्पण है।"

सब चौंक पड़े। होस्टल की मेस से खाना खाने के बाद टहलने निकल गए थे। चाँदनी रात। शहर की ओर जाने वाली सड़क विशेष अच्छी लगती थी, चाँदी की लकीर की तरह। हवा में पेड़ ऐसे झूमते जैसे कव्वाली की धुन पर तालियाँ बजा रहे हों: जिस विषय पर बातें चल रही थीं, वह खाना खाने के पूर्व छिड़ गया था - एक सद्य-प्रकाशित उपन्यास को लेकर बहस इतनी बढ़ गई कि साहनी चीखकर बोला, "आखिर साहित्य क्या है?"

तभी सड़क के किनारे के पुराने पेड़ ने कहा, "साहित्य समाज का दर्पण है।"

हमने चारों ओर देखा, उत्तर देने वाला कोई व्यक्ति नहीं। पेड़ के पीछे या पेड़ के ऊपर कोई नहीं था।

साहस करके गुप्ता ने कहा, "कौन है वहाँ?"

कोई जवाब नहीं है। लगता था, किसी भुतहा कहानी की शुरुआत हो रही है।

"भूत है रे यहाँ!"

और तेज़ी-से हम सब एक ओर भाग लिए कि पुलिया पर जा दम लिया। लगभग आधा घण्टा पेड़ के जादू पर सोचते रहे और फिर साहस कर वापस पेड़ के निकट आए। साहनी ने ज़ोर-से कहा, "आखिर साहित्य क्या है?"

और पेड़ से गम्भीर वाणी सुनाई दी, "साहित्य समाज का दर्पण है।" सब आश्चर्य से एक-दूसरे का मुँह देखने लगे।

"नई कविता क्या है?" वर्मा ने कहा।

"ऊँ... !" और पेड़ निरुत्तर हो गया। कुछ देर हमने प्रतीक्षा की पर वह चुप रहा।

"काव्य क्या है?"

"वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्!" गम्भीर उद्‌घोष हुआ।

जब कॉलेज में यह अनुभव सुनाए गए तो सब हँसे। किसी ने मूर्ख कहा, किसी ने डाँटा। जहाँ जाते, स्वागत में ठहाके लगते कि ये आए पेड़ से आवाज़ें सुनने वाले!

विश्वविद्यालय प्रेस के अधीक्षक शर्माजी अपने को बड़ा साइंटिस्ट बताते हैं। खबर उन तक भी पहुँच गई, तो रात को वे होस्टल आए और कहने लगे, "बताइए, कौन-से पेड़ से

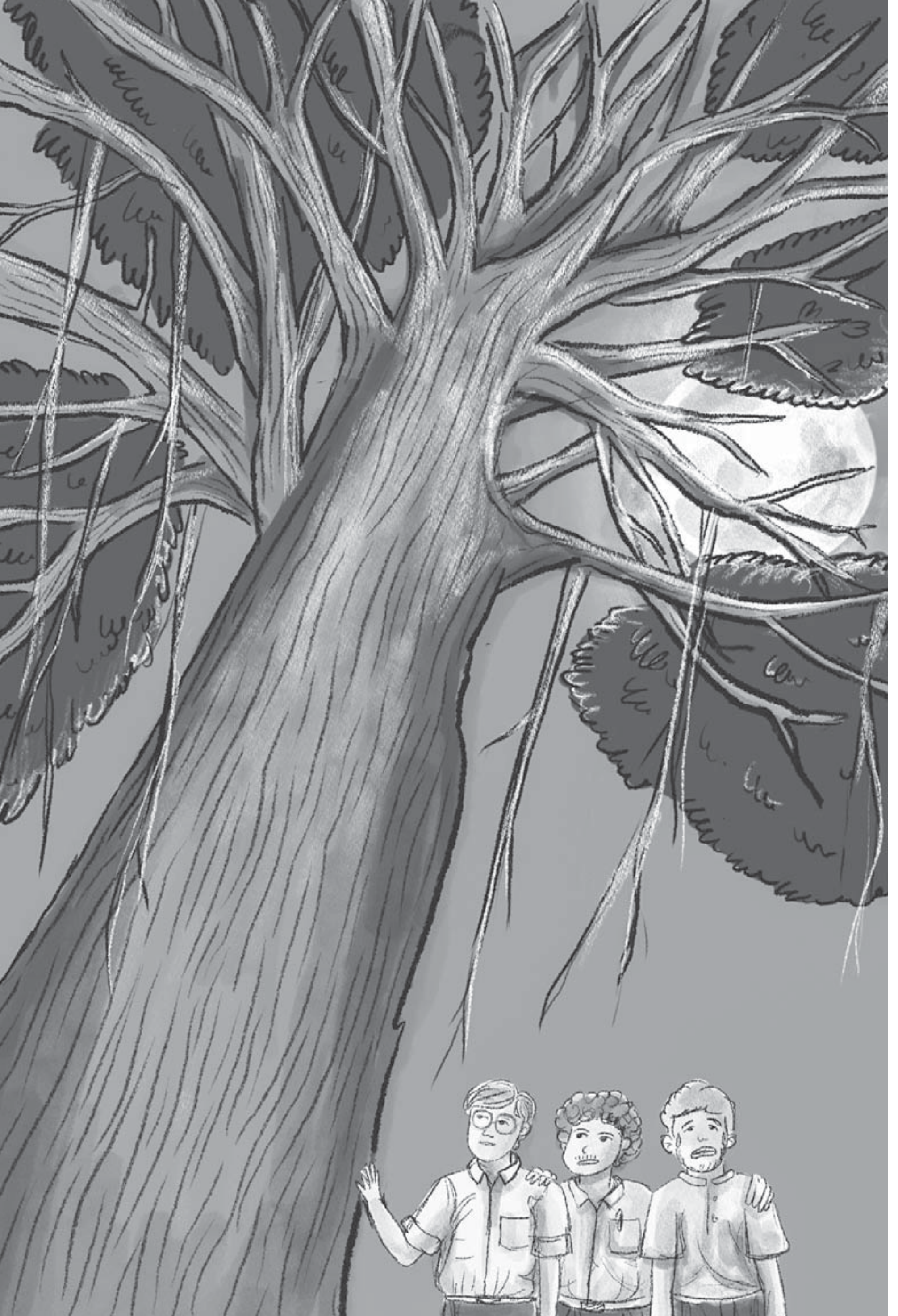

आवाज़ आती है, मैं अभी भूत भगाता हूँ।"

हम उन्हें पेड़ तक ले गए। प्रश्न किया, "काव्य क्या है?" और उत्तर मिला, "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।" शर्माजी ने चिल्लाकर कहा, "कौन हो तुम बोलने वाले?"

कोई उत्तर नहीं आया।

"और कुछ प्रश्न पूछो भाई इससे।"

"प्रगतिवाद क्या है?"

"हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति।" आवाज़ आई।

पुराना खूसट पेड़ था। प्रगतिवाद को नवीनतम प्रवृत्ति कहने वाला!

"और प्रयोगवाद क्या है?"

"ऊँऽऽऽ..." पेड़ इतना कहकर चुप हो गया।

"छायावाद क्या है?"

"स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह।" उत्तर मिला।

शर्माजी हैरान खड़े इस अलौकिक वार्तालाप को सुन रहे थे। कहने लगे, "बिलकुल अजीब बात है कि पेड़ बोलता है। मैं इस पेड़ को बरसों से जानता हूँ। यूनिवर्सिटी प्रेस जब नई इमारत में नहीं गया था और सामने के इस मकान में था, तब से" फिर सोचते हुए कहने लगे, "बात तो कुछ विचित्र होगी पर ऐसा हो सकता है कि किसी रासायनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत पेड़ विद्वान हो गया हो।"

"क्या मतलब?"

"पहले इस पेड़ के पास एक गड्ढा था जिसमें हमारे प्रेस के रद्दी कागज़, प्रूफ आदि डाल दिए जाते थे। कुछ थीसिस और हिन्दी साहित्य का इतिहास, जो उस समय छपे थे, इस पेड़ की जड़ में पड़े हैं और यह पेड़ विद्वान हो गया।"

"पर इससे आवाज़ क्यों आती है?"

"पेट में किताब पड़ी है तो मुँह से आवाज़ तो निकलेगी ही। विद्वान् है तो बोलेगा ज़रूर। चुप थोड़े रहेगा!" गुप्ता ने समाधान किया।

पेड़ से एक प्रश्न और पूछा, "हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति कौन-सी है?"

उत्तर मिला, "कामायनी।"

"सर्वश्रेष्ठ नाटककार कौन है?"

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।"

"उनके बाद?"

"प्रसादजी।"

"उनके बाद?"

"ऊँऽऽऽ...!" पेड़ चुप हो गया।

"प्रेमचन्दजी के विषय में क्या जानते हैं?"

"वे ग्राम-जीवन के चतुर चितेरा थे।"

"सूर और तुलसी में कौन श्रेष्ठ है?"

"सूर तूर, तुलसी ससी, उड्गन केसवदास। अब के कवि खद्योत सम जँह-तँह करत प्रकास।"

"डब्ल्यू.एच. ऑडेन का नाम सुना है?"

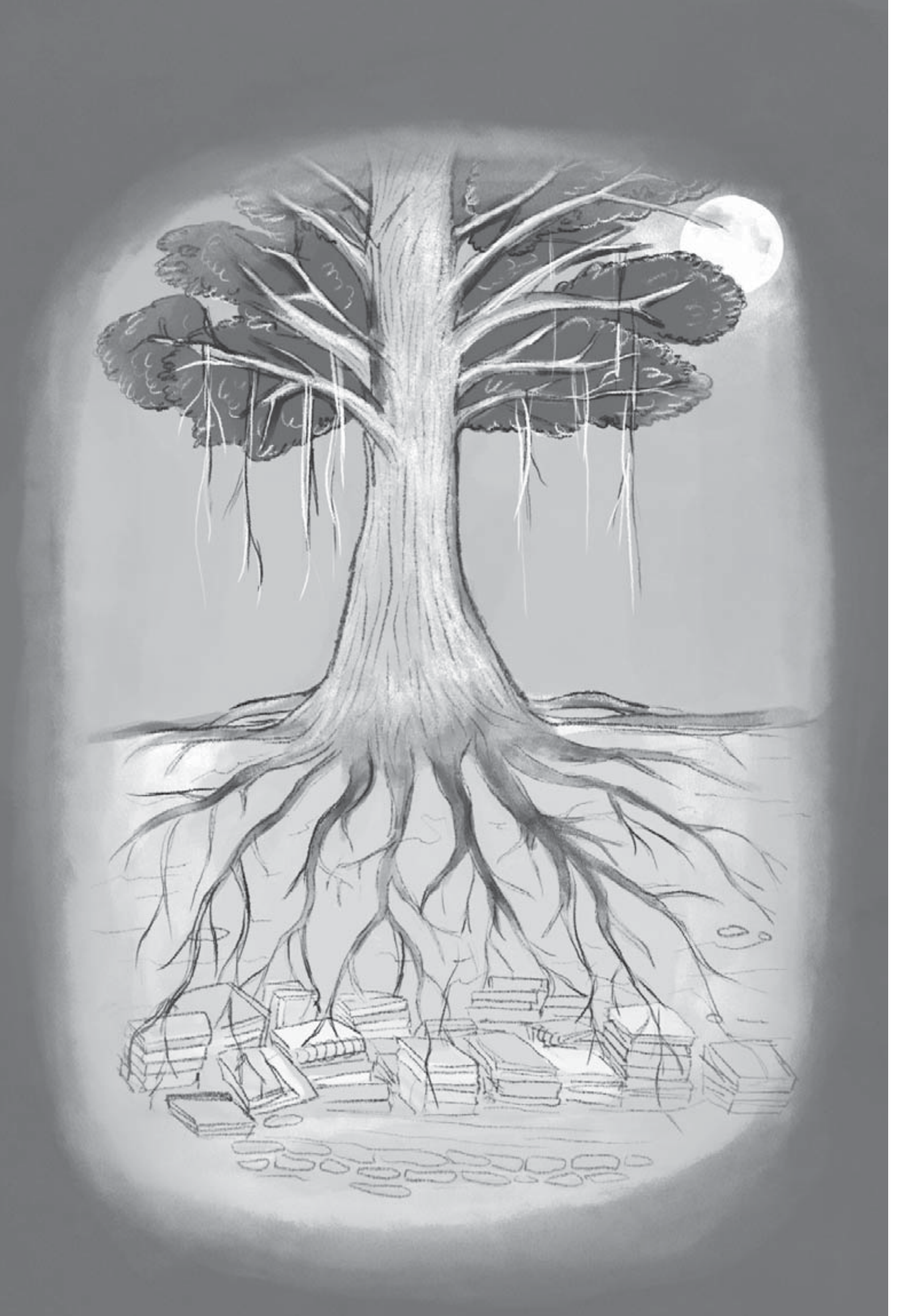

"ऊँ...ऽऽऽ !" कहकर पेड़ चुप हो गया।

अब यह निश्चित हो गया था कि क्लासिक ढंग के प्रश्न पूछिए, क्लासिक उत्तर मिलेंगे। नई समस्या पर पूछेंगे, पेड़ चुप हो जाएगा। शर्माजी का विश्लेषण ठीक था। पेड़ की जड़ में पुरानी थीसिसें पड़ी हैं, जिनका रस पीकर पेड़ विद्वत्ता-भरे उत्तर देता है।

कुछ दिनों बाद हम सबने यह निश्चय किया कि पेड़ को वैचारिक रूप से अप-टू-डेट किया जाए। कुछ नई पुस्तकें इकट्ठी की गईं। सभी नए साहित्य पर थीं। स्वयं शर्माजी ने पेड़ के आसपास एक-एक फुट गहरा गड्ढा किया और उसमें वे किताबें रख दी गईं। नई थीसिस की पुस्तकों की खाद से पेड़ विद्वान हो जाता है, यह बात सिद्ध हो जाती तो विज्ञान जगत में शर्माजी का भी आठ-दस इंच स्थान हो जाता।

दूसरे रोज़ हमने आकर पेड़ से प्रश्न किए परन्तु कोई उत्तर नहीं मिला। निश्चित था कि पेड़ इस समय मनन कर रहा था और क्लासिक प्रश्नों के उत्तर देने के मूड में नहीं था। तीसरे-चौथे रोज़ भी यही रहा। हमें डर लगा कि पेड़ सदैव के लिए चुप न हो जाए।

"शर्माजी, नए साहित्य के संसर्ग में आकर पेड़ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई है। वह मौन हो गया है। अच्छा यही है कि नई पुस्तकें वापस निकाल लें ताकि कम-से-कम उत्तर सुनने का चमत्कार तो नष्ट न हो।"

रात को शर्माजी के नेतृत्व में कुदाली लेकर पेड़ के पास जब पहुँचे तो देखकर सन्न रह गए कि पेड़ नीचे गिरा हुआ था। हमें दुख हुआ – जैसे हमने पेड़ की हत्या कर दी हो।

वर्मा ने कहा, "इस बूढ़े पेड़ के सम्पर्क में नया साहित्य नहीं आना चाहिए था। बेचारे से पचा नहीं और शॉक लग गया। हम सब इसके हत्यारे हैं।"

संगीत के प्रेमी पेड़ तो बहुत-से हैं जो गीत सुनकर विकसित होते हैं, साहित्य का प्रेमी वृक्ष एक यही था जो धराशायी हो गया।

हम सब वापस लौट आए – सिर झुकाए हुए।

माहभर बाद जब हमारे हिन्दी के 'हेड ऑफ द डिपार्टमेण्ट' जो उन दिनों छुट्टी पर थे, वापस लौटे तो हमने सारा किस्सा सुनाया। शुरू में आश्चर्य हुआ पर बाद में आपने स्वीकार किया कि ऐसी दैविक शक्ति हो सकती है और वृक्ष भी ऐसे उत्तर दे सकता है।

साहनी ने हँसकर कहा, "सर, बड़े क्लासिक उत्तर देता था वह पेड़। हमने पूछा कि 'सर्वश्रेष्ठ नाटककार कौन है' तो बोला, 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र।' पूछा कि 'काव्य क्या है' तो कहता था, 'वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्।' हमने पूछा, 'प्रगतिवाद क्या

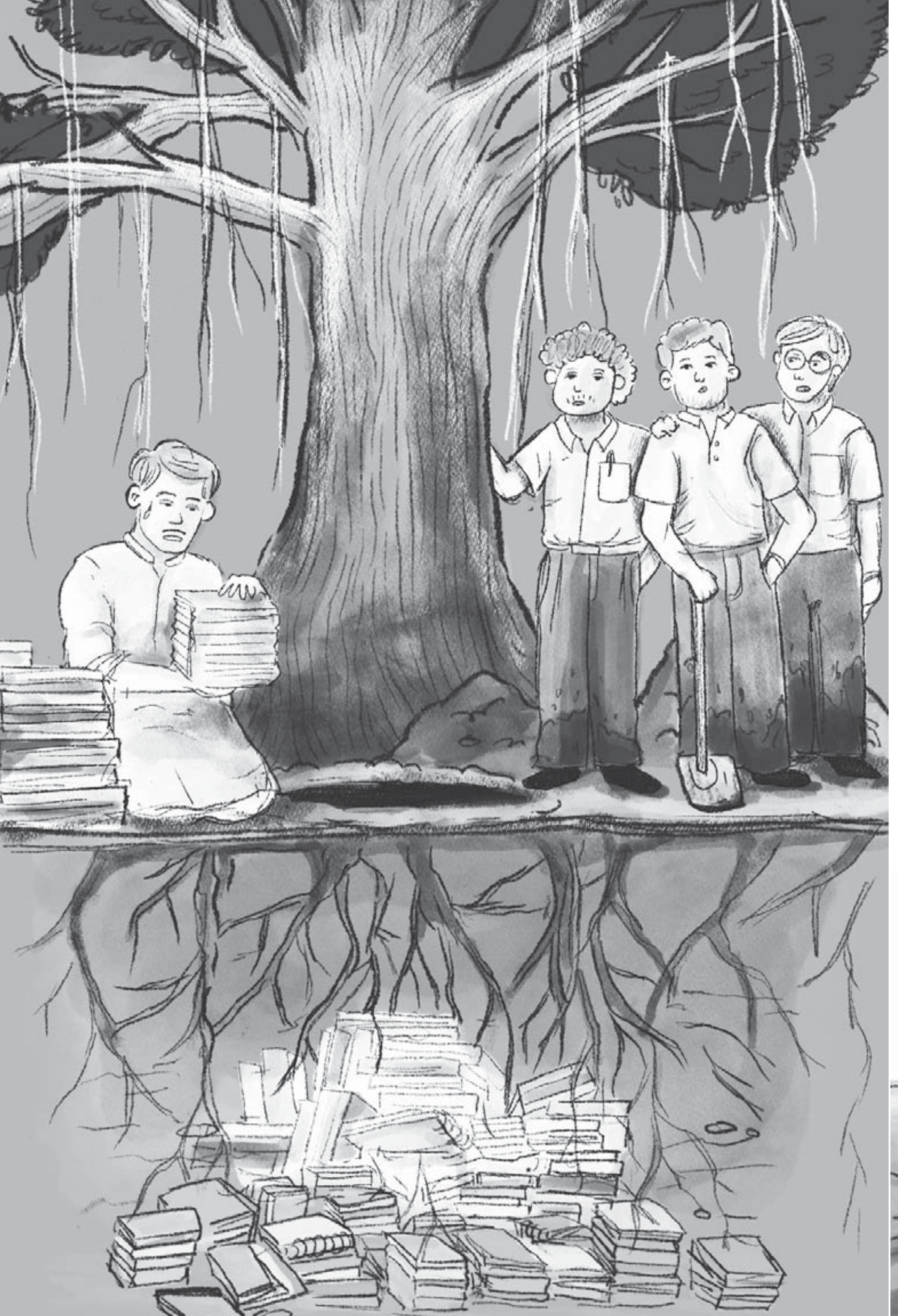

है' तो कहने लगा, 'हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति।' सुनकर बड़ी हँसी आती थी।"

"इसमें गलत क्या बोला वह?" हेड ऑफ द डिपार्टमेण्ट ने कहा, "ठीक ही तो है। प्रगतिवाद हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति ही तो है। काव्य की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा पण्डितराज जगन्नाथ की ही है।"

"और प्रयोग...!" पर साहनी अधूरे में रुक गया।

"ऊँ...ऽऽऽ!" हेड ऑफ द डिपार्टमेंट ने कहा और फिर जाने क्या सोचते चुप हो गए।

हम सब उनके कक्ष से बाहर चले आए। उस शाम हमने कसम खाई कि हेड ऑफ द डिपार्टमेंट से नए साहित्य पर कभी चर्चा नहीं करेंगे, उन्हें कोई पुस्तक नहीं देंगे, प्रश्न नहीं उठाएँगे। उनकी दीर्घायु की कामना करते हुए हमने यह निश्चय किया था।

एक पेड़ मर गया था, दूसरा पेड़ मरने नहीं देंगे।

शरद जोशी (1931-1991): भारतीय कवि, लेखक, व्यंग्यकार और हिन्दी फिल्मों व टेलीविज़न के संवाद एवं पटकथा लेखक थे। राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक विषयों पर अनेक व्यंग्यात्मक निबन्ध लिखे हैं। उन्हें वर्ष 1990 में पद्मश्री से सम्मानित किया गया था।

सभी चित्र: अदिति दीक्षित: दिल्ली में स्थित लेखिका, फिल्म निर्माता, चित्रकार और स्टॉप मोशन एनिमेटर हैं। उनकी स्टॉप मोशन शॉर्ट फिल्म *डेज़ी* वर्तमान में दुनियाभर में 25 से अधिक फेस्टिवल में नामांकित हुई है और उसे 6 फेस्टिवल में सर्वश्रेष्ठ छात्र स्टॉप मोशन शॉर्ट फिल्म का पुरस्कार दिया गया है। उन्होंने भारत की पहली वयस्क एनिमेटेड व्यंग्य श्रृंखला *आपकी पूजिता* के दो एपिसोड भी लिखे और निर्देशित किए हैं।

सवालीराम

50 YEARS of HSTP

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम

सवाल: दोपहिया वाहन घुमावदार सड़क पर मुड़ते वक्त अपने अक्ष पर क्यों झुक जाते हैं?

– अनिल सूर्यवंशी, विद्यार्थी, भोपाल, म.प्र.

जवाब: जब दोपहिया वाहन को किसी घुमावदार सड़क पर चलाते हैं तो वह घुमाव के केन्द्र की ओर (सरल भाषा में अन्दर की ओर) झुक जाती है। कई लोग कहते हैं कि दोपहिया वाहन झुकाने के कारण ही हम गोलाई में आगे बढ़ते हैं। लेकिन मामला थोड़ा पेचीदा है। चलती हुई साइकिल पर कई बल काम करते हैं। एक तो है, साइकिल और उसके सवार पर लगने वाला गुरुत्व बल जो सीधे नीचे की ओर काम करता है। दूसरा है, पैडल मारकर पहियों पर लगाया गया बल (घूर्णन बल) जो साइकिल को आगे की ओर ले जाता है। तीसरा है, टायरों और सड़क के बीच लगने वाला घर्षण बल। ध्यान देंगे तो याद आएगा कि हम पैडल मारकर पिछले पहिए को गति देते हैं, तब वह अपने अक्ष पर घूमने लगता है। टायरों और सड़क के बीच लग रहा घर्षण बल उसके घूमने की उलटी दिशा में लगता है। दूसरी ओर, अगले पहिए को गति तो पिछले पहिए द्वारा धकाए जाने से मिलती है। यदि अगला पहिया पिछले पहिए के धक्के से न घूम सके तो सड़क पर घिसटाएगा। तब तो घर्षण पीछे की ओर ले जाने

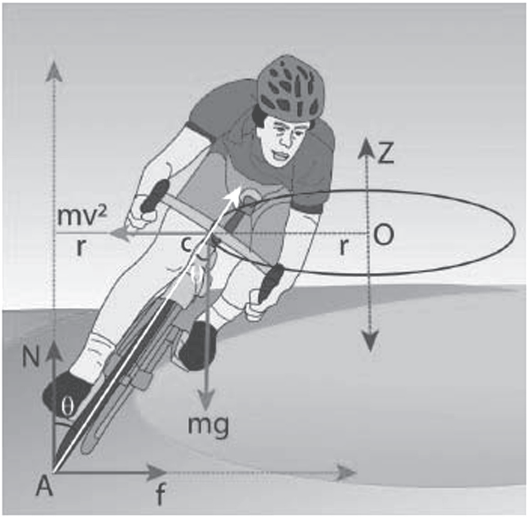

चित्र-1: साइकिल चालक का झुकाव।
r = त्रिज्या (radius), v = गति (speed), m = द्रव्यमान (mass), O = केन्द्र (center), C = गुरुत्वाकर्षण केन्द्र (center of gravity), mg = गुरुत्वाकर्षण बल (gravitational force), N = सामान्य बल (normal force), f = घर्षण बल (frictional force), mv^2/r = अपकेन्द्री बल (centrifugal force).

यानी रोकने की कोशिश करेगा। लेकिन धक्का मिलने पर अगला पहिया घूमने लगता है। तो सोचिए कि यदि घर्षण बिलकुल भी न हो या बहुत कम हो तो साइकिल आगे नहीं बढ़ेगी। किसी चिकनी जगह पर साइकिल चलाने की कोशिश करेंगे तो समझ आ जाएगा। यही नहीं, ऐसे में और भी दिक्कत होगी मुड़ने में।

कोई न छेड़े तो साइकिल एक सीधी रेखा में चलती जाएगी। हैण्डल घुमाकर आप उसकी सरल रेखीय गति के साथ छेड़छाड़ ही तो करते हैं। जब आप (मान लीजिए) हैण्डल को बाईं ओर घुमाते हैं तो होता यह है कि अगला पहिया घूमने के साथ-साथ थोड़ा घिसटने भी लगता है। सीधी रेखा में चल रही साइकिल पर लग रहे बल होते हैं - गुरुत्व बल (सीधे नीचे की ओर), सड़क का लम्बवत बल (सीधे ऊपर की ओर), घर्षण बल (साइकिल के पहिए की गति की उल्टी दिशा में)। अगले पहिए को बाईं ओर मोड़ देने से फर्क यह हो गया है कि यह एक वक्राकार गति हो गई है। वक्राकार गति में अपकेन्द्री/अपसारी बल मौजूद होता है जो कि साइकिल को बाहर की ओर धकेलता है। इसका एहसास आपको भी कभी-न-कभी हुआ होगा, खासकर तब जब गति कुछ अधिक होती है।

सीधी चलती साइकिल में गुरुत्व केन्द्र दो-पहियों को जोड़ती रेखा के ऊपर होता है। मुड़ते समय गुरुत्व बल, सड़क का लम्बवत बल, सड़क-टायर का घर्षण बल और अपसारी बल इन सबका घूर्ण (बल आघूर्ण या torque) तब तक सन्तुलित नहीं हो जाता जब तक कि गुरुत्व केन्द्र, वृत्त के केन्द्र की ओर नहीं खिसकता। साइकिल चलाता व्यक्ति अन्दर की

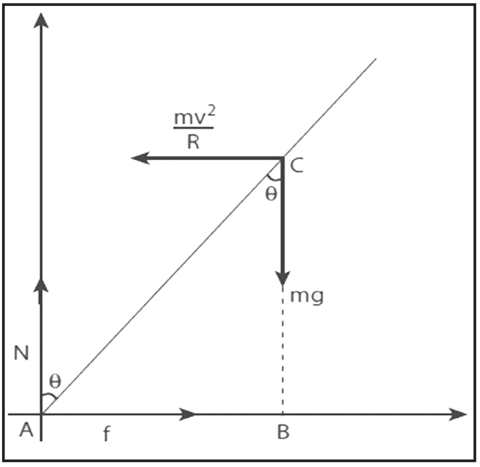

चित्र-2: मोड़ लेते समय साइकिल चालक पर लगने वाले बल।

ओर झुककर ऐसी स्थिति को प्राप्त कर लेता है। इससे वह गिरने से बच जाता है।

अगर बलों और आघूर्णों का गणित समझेंगे तो झुकाव का कोण, आपकी स्पीड और मोड़ की गोलाई के बीच सम्बन्ध का पता चलता है। यानी अगर आप ज़्यादा स्पीड से जा रहे हों तो राइडर को एक निश्चित मोड़ की गोलाई के लिए ज़्यादा झुकाव बरकरार रखना पड़ेगा। कम स्पीड में उसी मोड़ की गोलाई के लिए कम झुकाव से भी काम चल जाएगा।

भास बापट: भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसन्धान संस्थान (IISER), पुणे में भौतिकी पढ़ाते हैं। भास भारत के सौर मिशन 'आदित्य एल 1' का हिस्सा रहे और विज्ञान शिक्षा में अथाह रुचि रखते हैं। एक लम्बे अरसे से *एकलव्य* संस्था के साथ जुड़े हैं।

सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

इस बार का सवाल: मौत के कुएँ में चलते वक्त दोपहिया वाहन और कार गिरते क्यों नही हैं?

- राघवेन्द्र दीवान, कक्षा-5, होशंगाबाद, म.प्र.

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।

RNI No.: MPHIN/2007/20203

प्रकाशक, मुद्रक, टुलटुल बिस्वास द्वारा निदेशक एकलव्य फाउण्डेशन की ओर से, एकलव्य, जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (म.प्र.) से प्रकाशित तथा भण्डारी प्रेस, ई-2/111, अरेरा कॉलोनी, भोपाल - 462 016 (म.प्र.) से मुद्रित, सम्पादक: राजेश खिंदरी।